उस पार का अंधेरा

एक ऐसे माहौल की विचारोत्तेजक
कहानी, जहां स्त्री-पुरुष सम्बन्धों
को नये ढंग से जांचने-परखने की कोशिश
करते हैं एक युवक और युवती
वे तोड़ते हैं उन सभी नियमों-
बंधनों को जो समाज, परिवार और रिश्तों को
युगों-युगों से थामे-साधे हुए
होते हैं, परन्तु सभी तरह के अस्वीकारों
के बाद भी अपने मनुष्य होने
और इस खातिर अपनी मूलभूत
आवश्यकताओं और महत्त्वाकांक्षाओं से
किसी तरह मुक्त नहीं हो पाते
एक ऐसा उपन्यास, जो एक स्त्री
और एक पुरुष के बीच मुक्त सम्बन्धों
को रेखांकित तो करता है;
पर उसकी वकालत नहीं करता
वह उपन्यास स्थापित करता है कि
जीवन सदा स्वस्थ मूल्यों और
नैतिकताओं के आधार पर
ही चल सकता है।

सुदर्शन नारंग

उस पार का अंधेरा

हिन्द पॉकेट बुक्स

उत्कृष्ट साहित्य का प्रतीक

उस पार का अंधेरा
(उपन्यास)

प्रथम पॉकिट बुक संस्करण : १९८५

प्रकाशक :
हिन्द पॉकिट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड
जी० टी० रोड, शाहदरा,
दिल्ली-११००३२

ANDHER

NARAN

उस पार का अंधेरा

जिस पात्र को मैं आपके सामने रखना चाहता हूं, वह मैं स्वयं ही हूं। आदमी के मन में जब भगदड़-सी मच उठती है, तो वह चुप नहीं रह सकता; पर जिन्दगी में भाग खड़े होने वाली बात हो, ऐसा भी नहीं है। न ही मैं किसी तरह की जल्दबाजी में हूं। प्रश्न केवल स्वयं को पहचानने का होता है। ऊपरी तौर पर मुझे किसी तरह के खतरे का आभास ही नहीं हो पाया था। बारह वर्ष तक अन्दर-ही-अन्दर कुछ चटकता रहा था और मेरा रुख अवहेलना का बना रहा था।

वास्तव में देखा जाए, तो एक सही शुरुआत भी कोई माने नहीं रखती। इसका मुझे बहुत बाद में अहसास हुआ था। परिस्थितियों की विचित्रता का पार पाना बहुत जटिल होता है। शुरू में तो सारा दोष मैं अपनी गलत शुरुआत और साधनहीनता को ही देता रहा। दरिद्रता का उतना दोष नहीं होता, जितना हीनभावना में ग्रस्त होने का। आपको मेरे आत्म-पीड़ित होने का भी भ्रम हो सकता है; पर बात केवल मेरी ही हो, ऐसा भी नहीं है। मैं आपको कई लोगों के बारे में बतलाना चाहता हूं।

किसी-किसी आदमी के लिए तो जिन्दगी अपनी होकर भी अपनी नहीं रह जाती। विशेष रूप से शुरू में इसे उतना अनुभव

पड़े होते और हम दुनिया में अपनी शिक्षा और आत्मविश्वास को स्थापित करने के असफल प्रयास में लगे रहते हैं। दरअसल दूसरे कुछ लोगों की स्थिति भी हमारे जैसी ही होती है और वे भी वैसे ही प्रयास में भटक रहे होते हैं। तब हम एक-दूसरे में स्वयं को खोजने में व्यस्त भी हो जाते हैं। किसी अन्य से हमें उतना ही मिल जाता है, जितना हम उसको देने की क्षमता रखते हैं।

मैं आपको उन कुछ लोगों के बारे में बतलाना चाहता हूं, लेन-देन के इसी सिलसिले में जो मेरे निकट संपर्क में आए और दूर होते चले गए।

इसमें मेरा भी दोष है कि लोगों को मेरे करीब या आत्मीय होने का भ्रम बहुत जल्द हो जाता है। उन लोगों में जिनके विषय में मैं आपको बताना चाहता हूं बहुत-से ऐसे भी हैं, जिन्हें मैंने बहुत दूर से देखा अथवा उनके एक पक्ष मात्र को देखा। उन लोगों के बारे में बनी मेरी राय में मेरे कुछ पूर्वाग्रह शामिल रहे हों, तो आश्चर्य की बात नहीं।

किसी और के विषय में कहने से पहले मैं विभु के बारे में बताना चाहता हूं। बारह वर्ष का लम्बा समय किसीको जानने-समझने के लिए पर्याप्त होता है, पर मैं कतई छिपाने को उत्सुक नहीं हूं कि विभा को लेकर मैं किसी भी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच पाया। पिछले बारह वर्षों में कई बार हम निष्कर्षों पर पहुंचते-पहुंचते रह गए। सामान्यतः ऐसी दिक्कत कम ही उत्पन्न ... र विभु के चेहरे की मन्द मुसकराहट का सही विश्ले-
... लिए असंभव कामों में से एक था।

झुंझलाहट में एक बार मैंने कहा था, "बारह वर्ष बिना किसी निष्कर्ष पर पहुंचे निकल गए"...।"

"शेष भी यूं ही बिना किसी निष्कर्ष पर पहुंचे निकल जाएंगे।" और एक मन्द-सी, ठीक वह, तो कुटिल मुसकान उसके होंठों पर दबकर रह गई थी।

यों उसके बयान से मुझ तसल्ली मिलती चाहिए थी; पर उसकी कुटिल मुसकान ने शब्दों का अर्थ ही बदल दिया था। ऐसे में बदले की क्रूर भावना मेरे अन्दर तिलमिला उठती। कई बार तो मैंने उससे बदला लिया भी था। अकारण जान-बूझकर, आहत कर स्त्री को दबाना शायद पुरुष की आधारभूत प्रवृत्ति होता है। न जाने वह कौन-सी मिट्टी से बनी थी? विद्रोह जैसे शब्द का तो उसने कभी सहारा ही नहीं लिया। ऐसा भी न था कि उसने कभी सर उठाया ही न हो।

दरअसल वह अति विरोधी प्रकृति की लड़की या शायद स्त्री थी। जब उसे गुस्सा आता फुंकार-सी करती हुई बिलबिला उठती। दूसरे ही क्षण जैसे किसी ने घड़ों पानी डाल दिया हो—शान्त हो उठती। ऐसे में गुमसुम वह अपने काम में लग जाती और फिर घंटों बिना बात किए चुपचाप आंखें चुरा नाराजगी जाहिर कर देती। बिन्नू के इस विरोधी स्वभाव को मैं कभी नहीं समझ पाया। एक कारण शायद उसकी कमजोर स्थिति भी था। मेरी धारणा निर्मूल हो ऐसा भी मुझे संशय रहता है। शुरू के सालों में उसने मतभेद का आभास भी नहीं दिया था। इधर उसके आचरण में कुछ अन्तर दृष्टिगोचर होने लगा था।

जिस उतावलेपन में मैं सारी बात बता देना चाहता हूं,

उसके बारे में कुछ भी समझ नहीं सकूंगा। आयु वर्षों की बहुत-सारी मानी है, जिनकी जानकारी के लिए नहीं स्थिति को समझना दुर्भाग्यवश हो सकता है। उसके मन पर कई प्रकार [illegible] अंकित हो जाते और [illegible] आज तुम्हें ही [illegible] मान बैठे।

हमारी मित्रता का अभी आरम्भ ही था और साथ रहने का निर्णय भी तब तक नहीं हुआ था। इसका अनुमान तुम्हें हो चुका था कि एक-दूसरे की संगत में समय अच्छा कट जाता है। कुछ-कुछ मैं आदमी के पास अपने विषय में बताने और दूसरे के विषय में जानने के लिए भी बहुत कुछ होता है। कुछ-कुछ आयु पर भी निर्भर करता है। पैंतालीस वर्षों की लम्बी उबाऊ मशीन,ताप करते-करते भी भी आदमी के अन्दर का कुछ-न-कुछ भुरभुरा जाता है।

कुछ वर्ष पहले मौका मिलता, तो इन्हीं बातों को बताने के लिए मेरे पास दूसरी शैली होती। अब वे बातें एक हद तक बचकाना भी जान पड़ती हैं। विभू तो अब भी अक्सर बचकानी हरकतें करने से बाज नहीं आती। उसे शिकायत होने लगी है कि मैं जल्दी बूढ़ा गया हूं। इस बात पर उसने शुरू में ही ध्यान दिया होता तो ,अच्छा रहता। कभी सोचता हूं, अभी भी कौन देर हुई है। देर तो कभी भी नहीं होती। तीस-बत्तीस की आयु नयी शुरुआत के लिए कुछ ज्यादा भी तो नहीं होती। उन दिनों जब हमारी मुलाकात हुई थी, तो उसकी और अपनी आयु का अन्तर मुझे सामान्य जान पड़ा था। विभू ने भी गम्भीरता से नहीं लिया था। आज बारह वर्ष बाद आयु का वह अन्तर एक

खाई की तरह गहरा और दीर्घकालीन हो उठा है।

पन्द्रह वर्ष का भेद पीढ़ियों के अन्तर की तरह किन्हीं भी दो लोगों को एक-दूसरे की ओर पीठ मोड़ अजनबियों की तरह अलग राह पर चल देने पर मजबूर कर सकता है। हमने तो बारह वर्ष निकाल दिए थे। इन वर्षों में इस बात का श्रेय हमेशा मैं स्वयं पर लेता रहा हूं। दरारों में एक दरार इस कारण भी उत्पन्न हुई थी।

कभी जब आदमी किसी गलत धारणा को ठीक मान लेता है, तो ठीक ही समझे चला जाता है। छोटी-सी त्रुटि का वर्षों सुधार नहीं हो पाता, फिर जब गलती का अहसास होता है, तो आत्मग्लानि का एक कारण यह भी रहता है कि इतनी क्षुद्र भूल हुई, तो हुई कैसे? जहां मैं इन बारह वर्षों के निर्विघ्न व्यतीत हो जाने का सेहरा बांधे घूमता फिरा, विभू हमेशा आगे की सोचती रही है। उसका निश्चित मत था, अब भी है, कि शेष जीवन भी यूं ही निर्विघ्न व्यतीत हो सकता है।

अपनी कुछ सीमाओं के बावजूद अक्सर मैं ही ऊब का शिकार होता रहा हूं। शायद इस कारण भी कि मैं स्ट्रिप्रस्त था। शुरू में ही अगर विभू ने जोर दिया होता, तो हम आम लोगों की तरह जीवन के सूत्र में बंध गए होते। जैसाकि शुरू में होता ही है, मैं किसी भी कीमत पर उसे प्राप्त करना चाहता था और उसकी तमाम शर्तें मुझे मान्य होतीं; पर मैंने देखा था कि विभू में मेरी तरह उतावलापन नहीं था और उसने कुछ समय यूं ही साथ रहने का सुझाव दिया था। उसका सुझाव इतना कारगर हुआ कि हमने बारह वर्ष व्यतीत कर डाले।

घटनाओं की समहीनता को निर्विरोध स्वीकार करते चले जाने के पीछे मेरी अनिश्चित मनःस्थिति का भी हाथ था और जो घटित होता रहा था वह इतना अप्रत्याशित और भयंकर था कि अच्छा-भला आदमी हताश हो उठता। अपने विषय में

मुझे कोई पता नहीं था। बर्दाश्त करने की क्षमता के कारण ही मैं दिन-दिन छोटे से बड़ा होता था और सिन्धु मेरे साथ बड़ी रही थी।

बाहर अन्धकार घिर आया था। मैं तैयारी कर रहा था, जब विभा पीछे से आकर खड़ी हो गई थी।

"तुम जल्दी ही लौट आओगे न ?"

"हाँ-हाँ, मैं जल्दी ही लौट आऊँगा।" कहते हुए मेरा स्वर काँप गया था।

एक समय वह भी था जब विभा के कारण मैं अच्छे-से-अच्छे निमन्त्रण की अवहेलना कर डालता था और शाम को उसके बगैर कहीं नहीं जाया करता था। यह सोचकर कि देर तो हो ही जाएगी, मैं मन-ही-मन खीज उठा था। देर की संभावना का उसे पता न हो ऐसा भी न था।

सफाई-सी पेश करते मैंने कहा था, "तुम्हें तो पता है। इन पार्टियों में क्या रहता है? जल्दी उठ जाना संभव ही नहीं होता।"

"जाना जरूरी है क्या ?"

नाट को ढीला करते हुए मैंने कहा था, "तुम नहीं चाहतीं, तो नहीं जाता।"

अपनी ही बात को लौटाते वह बोली थी, "यह मेरा मतलब नहीं। [illegible] स्वयं सोचना चाहिए। आधी रात तक प्रतीक्षा में [illegible] हाल होगा ? थोड़ा जल्दी भी तो उठ सकते

आश्वासन देते हुए मैं फिर से तैयारी में

टूट गया था। शुरू के एक साल में जब हम इस घाटी में आए थे, तो लोग हमें पति-पत्नी समझते थे। जिन्हें हमने वास्तविकता बता दी, वे उसे मेरी मंगेतर समझ सिर पर उठाए रहे थे। उस साल सभी के यहां से दोनों के लिए निमन्त्रण रहता। बाद में लोग औपचारिकतावश कभी बुलाते भी तो केवल मुझे ही निमन्त्रण भेजते। सम्भवतः विभा का बहिष्कार जतलाने के लिए उन्होंने उसकी अवहेलना की आड़ ली थी।

वह अब भी स्थिर पीछे खड़ी थी। मैंने मुड़ते हुए कहा था, "देखो, भई! तुम तो एकदम अजनबियों की तरह खड़ी हो।"

वह एकदम तमक उठी थी, "तुम्हें इस तरह मेरा अपमान करने का कोई हक नहीं।"

उसका आशय मैं एकदम समझ गया था, "इधर तुम बिल-कुल बच्चों जैसा आचरण करने लगी हो। तुम्हें तो पता है, जाना कितना जरूरी है। इसमें हमारा अपना स्वार्थ…"

"मेरा आचरण तो जैसा भी है; लेकिन मुझे तुम पर आश्चर्य होता है। तुम इस तरह घुटने टेक दोगे, मुझे कभी उम्मीद नहीं थी।"

"मैं जो हूं मुझे अच्छी तरह मालूम है। अब शेष गुस्सा लौटने पर…।"

बात काटते हुए उसने कहा था, "एक समय था जब मुझे छोड़ तुम कहीं जाना पसन्द नहीं करते थे। जिन्हें मैं असह्य थी, उनसे मेलजोल तक गवारा नहीं था और अब स्वार्थों को साधने की बातें अधिक महत्त्वपूर्ण हो गई हैं।"

…अपने तक ही रखो, तो बेहतर …था, जो खाली नहीं जाता। …जिसका मैं मात्र अभिनय ही …लेती।

मुझे कोई भ्रम नहीं था। बर्दाश्त करने की क्षमता के कारण ही मैं छिन्न-भिन्न होने से बच पाया था और विभू मेरे साथ बनी रही थी।

बाहर अन्धकार घिर आया था। मैं तैयारी कर रहा था, जब विभा पीछे से आकर खड़ी हो गई थी।

"तुम जल्दी ही लौट आओगे न?"

"हाँ-हाँ, मैं जल्दी ही लौट आऊंगा।" हठात् मेरा स्वर काँप गया था।

एक समय वह भी था जब विभा के कारण मैं अच्छे-से-अच्छे निमन्त्रण की अवहेलना कर डालता था और शाम को उसके बगैर कहीं नहीं जाया करता था। यह सोचकर कि देर तो हो ही जाएगी, मैं मन-ही-मन खीज उठा था। देर की संभावना का उसे पता न हो ऐसा भी न था।

सफाई-सी पेश करते मैंने कहा था, "तुम्हें तो पता है। इन पार्टियों में क्या रहता है? जल्दी उठ जाना सम्भव ही नहीं होता।"

"जाना जरूरी है क्या?"

नाट को ढीला करते हुए मैंने कहा था, "तुम नहीं चाहतीं, तो नहीं जाता।"

अपनी ही बात को लौटाते वह बोली थी, "यह मेरा मतलब नहीं। तुम्हें स्वयं सोचना चाहिए। आधी रात तक प्रतीक्षा में बैठे-बैठे मेरा क्या हाल होगा? थोड़ा जल्दी भी तो उठ सकते हो।"

जल्दी लौटने का आश्वासन देते हुए मैं फिर से तैयारी में

छूट गया था। शुरू के एक साल में जब हम इसी घाटी में आए थे, तो लोग हमें पति-पत्नी समझे थे। जिन्हें हमने वास्तविकता बता दी, वे उसे मेरी मंगेतर समझ सिर पर उठाए रहे थे। उस साल सभी के यहां से दोनों के लिए निमन्त्रण रहता। बाद में लोग औपचारिकतावश कभी बुलाते भी तो केवल मुझे ही निमन्त्रण भेजते। सम्भवतः विभा का बहिष्कार जतलाने के लिए उन्होंने उसकी अवहेलना की आड़ ली थी।

वह अब भी स्थिर पीछे खड़ी थी। मैंने मुड़ते हुए कहा था, "बैठो, भई! तुम तो एकदम अजनबियों की तरह खड़ी हो।"

वह एकदम तमक उठी थी, "तुम्हें इस तरह मेरा अपमान करने का कोई हक नहीं।"

उसका आशय मैं एकदम समझ गया था, "इधर तुम बिलकुल बच्चों जैसा आचरण करने लगी हो। तुम्हें तो पता है, जाना कितना जरूरी है। इसमें हमारा अपना स्वार्थ..."

"मेरा आचरण तो जैसा भी है; लेकिन मुझे तुम पर आश्चर्य होता है। तुम इस तरह घुटने टेक दोगे, मुझे कभी उम्मीद नहीं थी।"

"मैं जो हूं मुझे अच्छी तरह मालूम है। अब शेष गुस्सा लौटने पर..."

बात काटते हुए उसने कहा था, "एक समय था जब मुझे छोड़ तुम कहीं जाना पसन्द नहीं करते थे। जिन्हें मैं असह्य थी, उनसे मेलजोल तक गवारा नहीं था और अब स्वार्थों को साधने की बातें अधिक महत्त्वपूर्ण हो गई हैं।"

"अपनी बकवास तुम अपने तक ही रखो, तो बेहतर होगा।" यह मेरा अन्तिम अस्त्र था, जो खाली नहीं जाता। मेरा पारा गर्म होते देखते ही, जिसका मैं मात्र अभिनय ही करता रहा हूं, वह चुपचाप एक ओर हो लेती।

दरअसल दोष मेरी का ही है, जो बात-चीत करना हो, उसके हुए भी चुप रहने को निमन्त्रण देती है या फिर दोष मेरा है, जो मैं ऐसे अधूरे निमन्त्रण को स्वीकार कर लेता हूं। पार्टियों में आने वाले लोगों के बारे में वह कुछ भी तो न जान पाती थी। अगले दिन जब वार्तालाप में मैं बार-बार उनकी चर्चा करता, तो विभू का खीजकर रह जाना स्वाभाविक ही था।

उसकी चुप रहने की आदत के बावजूद कभी-न-कभी हमारे बीच भी स्थिति उत्पन्न हो जाती। शुरू से ही उसे आत्मनियंत्रण की आदतें डालनी पड़ी थीं। ऐसा नहीं कि वह भीरु प्रकृति की थी या निर्णय पहले लगी थी। मेरा अनुमान अब भी यही है कि मेरा मेरे प्रति लगाव के कारण था। जब दो लोग साथ-साथ रहते हैं, तो अकसर वे एक-दूसरे पर निर्भर करने लगते हैं।

रात जब मैं लौटा तो वह सो चुकी थी। बाहर से ही ताला खोल लेने की दोनों के पास अपनी-अपनी चाबी रहती है। विभू से सामना होने की संभावना से मुझे घबराहट-सी हो रही थी और लगा था वास्तव में दोष मेरा ही है। अकसर घबराहट झुंझलाहट में बदल जाती और मगता मैं धंसता चला जा रहा हूं।

बाहर धीमी-धीमी रोशनी उभर चुकी थी। पूरी रात मैंने विभू के साथ अपने संबंधों के बारे में सोचते व्यतीत कर डाली थी। लम्बी रात जैसे उड़कर समाप्त हो गई थी। ऐसा मेरे साथ अकसर हो जाता है। छोटी-सी बात लेकर पूरी-पूरी रात उलझा रहता। दरवाजे पर आहट पा मैं अचकचा-सा गया था। विभा को सामने पा अनायास मैं बोल पड़ा था, "जाग गई ?"

और लगा था कल रात से अब तक औपचारिकता की एक

कौन-सी रेखा उभर आई है। एक बार तो मन हुआ था साफ ही कह दूं, अब और साथ चलना संभव नहीं।

सहसा विभू ने पूछा था, "रात बहुत देर तक जागते रहे हो? थके-से लग रहे हो।"

इससे पहले कि मैं कुछ कहता दोबारा बोल पड़ी थी, "तुम्हारे लिए चाय लाती हूं। थोड़ा और आराम कर लो तब तक।"

विभा की बात को महत्त्व देने की बजाय मैंने कहा था, "अब यहां मन नहीं लगता। नीचे मैदानों में जाने की सोचता हूं।"

"मैंने कब रोका है? तुम ही अकसर लोगों के भय से चल नहीं पाते।"

लोगों से उसका आशय हम दोनों के घरवालों से था। बात को यूं घुमा-फिराकर उसकी कटुता को कम बनाकर कहने की उसकी आदत से मैं पूरी तरह वाकिफ हो चुका हूं।

"मैं कुछ दिनों के लिए जाऊंगा। पीछे रह लोगी न तुम?" स्थायी रूप से चलने का तो कोई इरादा नहीं था मेरा।

"मैं साथ क्यों नहीं जा सकती?"

मुझे चुप रह जाना पड़ा था। वास्तव में मैं कुछ दिनों के लिए विभा से अलग रहना चाहता था। संभवतः कुछ महीनों के लिए। पूरी स्थिति पर मैं ठंडे मन से सोचना चाहता था। बंधे रहने की प्रतिबद्धता थी ही कहां हम लोगों में?

मजाक में ही सही, अकसर वह कह डालती थी, "तुम्हारा-हमारा रिश्ता ही क्या है? जब जी में आएगा जिसके साथ चाहूंगी चल दूंगी।"

दूसरे ही क्षण लगा था, वह स्वयं को धोखा देने की बात है। उसकी नीयत पर शक करने का प्रश्न ही कहां था? इस तरह से वह जतलाना चाहती थी कि उसने मेरा विश्वास किया था।

बाहर खिड़की में कोहरा पूरी तरह साफ हो गया था। रात शायद पानी भी पड़ा था। घाटी में पहली बर्फ भी गिर चुकी थी। पिछले साल की ही तरह यह दिसम्बर भी बहुत ठंडा-ठंडा लग रहा था। लगा था गलत सोच रहा हूं। पिछले बारह वर्ष से ही दिसम्बर हर बार बहुत ठंडा-ठंडा रहा था। बारह वर्ष पहले विभू और मैं मैदानों की गर्मी और लोगों के ठंडेपन से भागकर इस घाटी में आए थे और फिर कभी लौटकर नहीं गए।

यहां पर आने के बाद पत्नी की परछाईं ने भी पीछा करना छोड़ दिया था। बच्चों की कभी याद आई भी, तो मात्र एक अव्यक्त उत्सुकता के कारण। तीन कमरों का यह मकान यहां आते ही मैंने खरीद लिया था। तीन कमरों में अन्दर-ही-अन्दर घूमा जा सकता है। शेष दो कमरों का अस्तित्व कभी-कभी बेमानी लगने लगता है। कहीं भी एक ही कमरे से काम चलाया जा सकता था; पर बात केवल मेरे तक सीमित नहीं थी। विभू को मकान और बाहर का दृश्य एकदम पसन्द आ गया था। बीच का कमरा खाली-सा ही रहता है। तीसरे कमरे को विभू ने अपनी रुचि के अनुसार सजा रखा था। एक-दूसरे के कमरे में हम बाकायदा अनुमति से ही जाते रहे थे। कभी बहुत अधिक उमड़ने पर रस्मों को तोड़ते भी रहे। इस समय बीच का दरवाजा बंद पाकर तसल्ली-सी महसूस हो रही थी।

सारा-सारा दिन सड़क पर कोई भी दिखाई नहीं पड़ता। साल-दर-साल उसी खामोशी की गंध छाई रहती। जाने क्यों लोग एक-दूसरे के व्यक्तिगत जीवन में हस्तक्षेप करते हैं। हस्तक्षेप से बच निकलने के लिए ही हम लोगों ने यहां आना चुना था। शुरू-शुरू में जिन्दगी काफी चैन और राहत से कटी थी। यहां घाटी में कोई पूछनेवाला न था; पर माहौल बिगाड़ने के लिए तो आपस के दो भी काफी होते हैं।

चाय की ट्रे लेकर विभू लौटी तो मैं झटके से उठ

भरा हुआ था।

"क्यों नाहक में उठ रहे हो? यहीं रहो, बैठो न।"

मैं वहीं ठिठक गया था। सामने कुर्सी पर बैठ गई थी। किस बात के मन में फिर कभी रही थी। मेरा अनुमान था, की शादी के बारे में वह कुछ पूछेगी; पर उसकी मुद्रा देख रहा था, वह प्रसंग एक मन्द नहीं उठाएगी।

पहले उसने कहा था, "कमियां तो हम सबमें ही होती हैं।"

"जिसे इस बात का अहसास हो, उसे तो किसी बात का बुरा मानना ही नहीं चाहिए।" अपने पक्ष को मजबूत बनाते हुए मैंने तुरन्त कह डाला था।

"एक सीमा भी तो होती है।"

"सीमाएं हमने स्वीकार ही कब की थीं?"

"मेरा कोई मतभेद नहीं है। जो भी मूक समझौता हम दोनों में पाया बाद के आश्वासनों की जो लम्बी सूची है, उसका लाभ मुझे भी उतना ही पहुंचता है, जितना तुम्हें। मेरी ओर से तुम स्वयं को किसी भी उत्तरदायित्व से मुक्त समझ सकते हो। यह मेरा पूरा सोचा-विचारा मंतव्य है।"

मैं एकदम चुप रह गया था। मेरा पैन उसने मेरे मुंह पर दे मारा था। थोड़ी देर पहले वह सभी में कमियां होने की बात कह रही थी। जब सबमें कुछ-न-कुछ खोट रहता है, तो दूसरे को ठेस पहुंचाने वाली बात कहना जरूरी थोड़े ही होता है। जिंदगी तो अच्छी चीज है, हम ही खामख्वाह पुरानी बातों को न भूल पाने के कारण उसमें कड़ुवाहट भरते रहते हैं। इधर शिभू बहुत तीखे प्रहार करने लगी है।

गुरु का जीवन भी कैसा अजीब था। उस जीवन की कोई भी बात मुझे पूरी बारीकी के साथ याद है। यही कारण है कि विभू की कही बातें मेरे लिए चिन्ता का विषय नहीं बनतीं। उन बारह वर्षों में उसे जानने और परखने का मुझे भरपूर अवसर मिला था। विधिवत् बंधन से मुक्त, जहां स्त्री और पुरुष साथ रहते हैं, कितना भी अनुरक्त होने का प्रयत्न क्यों न किया जाये स्वेच्छा की भावना हावी रहती ही है। उससे चाहकर भी बचा नहीं सकता। पति-पत्नी सम्बन्धों में एक प्रकार की विवशता का समावेश रहता है।

बिना किसी नये आयाम की खोज के चक्कर में भी। मैं कोई भी काम रौ में ही कर डालने का आदी था। यह जीवन चुनने के पीछे संभवतः ऐसी प्रेरणा का भी हाथ था, जो जीवन-मूल्यों, संघर्ष और साहसिकता के नये आयाम का अन्वेषण करना चाहती है। एक प्रकार के अविश्वसनीय संबंध को बारह वर्ष के लम्बे समय तक खींच जाना भी तो आखिर स्वयं में एक मान्यता है।

संजोए गए जीवन में भी कम कठिनाइयां नहीं होतीं, इसका भी कुछ अनुमान मुझे है। पांच लम्बे वर्ष शुभदा को बर्दाश्त करने के बाद निर्णायक स्थिति स्वयं ही उपस्थित हो गई थी। बच्ची को लेकर अलग होने का प्रस्ताव उसी का था। बंधनपूर्ण उस जीवन के बाद तीन वर्ष का भटकाव और फिर विभू के साथ बारह वर्ष। जैसे कल की बात हो।

[illegible] दिनों के दरम्यान कभी-कभी निष्क्रिय हुआ जाता है। दिन के [illegible] विशेष मायने नहीं हैं। पुरा-नया, पुराना दिन बाकी और [illegible] रहता। शाम के वक्त भी पुराना ही आज पड़ता है [illegible] पुराना हुआ है [illegible] दिनों और इन दिनों के बीच [illegible] है। उन दिनों की स्मृति में एक प्रकार की बेचैनी का [illegible] रहता अर्थात इन दिनों के मारीचन में उस का [illegible] अधिक होता है।

[illegible] आदमी थक भी तो जाता है। खिड़की की राह गई महक कमरे में दाखिल होती, तो फिर वहीं अटककर रह जाती। चेहरे पर अजीब-सी चिपचिपाहट महसूस होने लगती है। हर [illegible] होने वाले [illegible] के साथ चेहरे की सिलवटें बढ़ती चली जाती हैं। बाहर जा[illegible] की इच्छा हुई थी; पर उस ठंड में निकलने की हिम्मत नहीं हो पा रही थी। लोग जाने कैसे लाल-पीले कपड़े पहन बाहर निकल पड़ते हैं।

अनायास ही विचार कौंध गया था, यमीयत [illegible] छोड़नी चाहिए। बारह वर्षों के लम्बे साथ के बावजूद त्रिभू का मकान पर स्वतः अधिकार स्थापित न हो पाया था।

दोबारा बिस्तर में जा पड़ने की इच्छा हुई। इतनी-सी देर में बिस्तर सीलन से भर गया था। मेरा वाला कमरा चट्टान पर ढलान की ओर पड़ता है। रात भीषण रूप से बादल गरजते रहे थे और तेज पानी पड़ा था। गड़गड़ाहट के साथ नींद टूटी थी और लगा था चट्टान बैठ जाएगी। कमरे का ढलान की ओर होना एक पुल की कल्पना से जुड़ जाता, जिसके नीचे अबाध गति से बहता पानी मचल रहा होता। पुल के पानी में बह जाने और चट्टान के बैठ जाने की बातें सोच का स्थायी क्रम बन चुकी थीं।

[illegible] दरारों की राह कमरे में आती रहती और बाहर [illegible] हुआ जान पड़ता। हर रात का अंधेरा

चलना होता है। अंधेरे को देखकर ही अनुमान हो जाता कि कौन-सी महीने की रातें चल रही हैं। सर्द कोहरा और धुंध आंखमिचौनी खेलते रहते। शुरू के सालों में विभू को उस आंख-मिचौनी में सम्मिलित होना अच्छा लगता था। तब हम अक्सर रात को ही उठकर बाहर घूमने निकल लेते थे।

लैम्पपोस्ट से यहां मरी रोशनी फूटती रहती। किरणें व्यर्थ ही छिटककर दूर-दूर भागने के प्रयत्न में पोस्ट की सतह से धराशायी होती रहतीं। इधर न जाने क्यों विभू और स्वयं के धराशायी होने की भावना उफान मारने लगी है। आश्चर्य हुआ था, अब तक हार स्वीकार करने से क्यों हम दोनों ही कतराते रहे थे।

सिरे वाले कमरे का चुनाव करते समय पहला प्रभाव अच्छा पड़ा था। बाद में गलती का अहसास होने पर भी दूसरे कमरे में शिफ्ट होने की बात टलती रही थी। बीच के कमरे को तटस्थ क्षेत्र बनाना ही सबसे बड़ी चुभन थी। धीरे-धीरे इसी कमरे में पड़े रहने की आदत बन गई।

पूरी घाटी के घरों में से एक तीखी गंध उठती रहती है। गर्मी के महीनों में पहाड़ों पर जब धूप चमकती है, तो गंध दब-सी जाती। चमकीली धूप के उन दिनों के लौटने की प्रतीक्षा हमेशा बनी रहती है और सर्दी के इन दिनों में निरन्तर अहसास बना रहता कि बरसाती कीड़ों के कचूमर से फैलने वाली इस गंध से अब कभी छुटकारा नहीं होगा। गर्मी तापने के लिए अक्सर वे कीड़े रात को बिस्तर में दुबक जाते। विभा को कीड़ों से बहुत डर लगता। रात में कई बार वह उठकर अंधेरे में अनुमान से ही बिस्तर झाड़ने लग जाती। सुबह उठने पर एक-आध कीड़ा बिस्तर पर मसला हुआ भी मिल जाता। उन कीड़ों के मरने से खून का एक भी कतरा बहते कभी दिखाई नहीं दिया था। बिस्तर पर फैले मैले कीचड़ को देखकर लगता, कीड़ों को

मरने से पीड़ा नहीं होती।

विभू ने एक बार कहा था, 'जब उन्हें पीड़ा नहीं होती तो वे मृत्युभय से मनुष्य की तरह ही क्यों घबराते हैं? कीड़े-मकौड़े भी जीने वाले जीव [illegible] प्राण बचाने की वैसी ही हरकत करते हैं जैसे कि मनुष्य। इससे निरर्थक जीवों में भी प्राणों का मोह बना [illegible] रहता है।'

विभा के तर्क से तो मच्छर या आदमी भी निरर्थक जीवनधारी ही है। सब कायर होते हैं। जीवनधारियों के प्रति वितृष्णा उत्पन्न होने के साथ ही मच्छर या, सूत्रधार बड़ा ही क्रूर और दूरदर्शी रहा होगा। पीड़ा के भय से हम सब एक लचीले तार से बंधे भ्रमित-से घूमते रहते हैं। वास्तव में किसी को किसी के लिए कोई सहानुभूति नहीं होती। अन्ततः सब स्वार्थ की भावना से ही संचालित होते हैं। दूसरों के लिए कुछ करने की भावना के पीछे असल भावना स्वयं को उस स्थिति में देखने का खतरा होता है।

ड्रेसिंग-टेबल के शीशे में हम दोनों की आकृतियाँ एक-दूसरे पर झुक आई थीं। शीशे में विभू का चेहरा मलिन और लम्बोतरा दिख रहा था। एक बीजाणु की तरह प्रस्फुटित होते जीवाणु में परिवर्तित हो धीरे-धीरे अन्दर-ही-अन्दर मछली की तरह फिसलने लगा था। संकरे तंग रास्तों को पार करता वह बाहर आता है। बाहर आते ही उसका आकार फैलकर एक प्रौढ़ आदमी में ढलकर दुःख-सुख, प्रेम-घृणा और सोचने-समझने के अस्त्रों से खेलने लगता है।

हड़बड़ाहट में नींद टूटी थी। सर्दी के दिनों में किसी भी

समय सोया जा सकता है। विशेषकर पहाड़ों पर तो दिन बहुत ही छोटी अवधि का होता है। बर्फ, कोहरा, पानी और उनकी मिलीजुली देन ठंड। थोड़ी देर के लिए कभी धूप निकल भी आती तो दबी-दबी-सी कब लौट जाती पता भी न चलता।

३

मेरा यह कमरा अपने में समूचा घर है। मेरी आवश्यकताओं का सारा सामान इसमें सिमटकर एक छोटी-सी दुनिया बन गया है। बड़ी-सी मेज, जिस पर मेरे मतलब के कागजात, लिखने का सामान और ढेर सारी किताबें। बगल में लम्बी अलमारी है, जिसमें भरी बहुत सारी किताबों के शीर्षक भी मैं भूल चुका हूं। मेज के साथ ही एक ओर बाहर से आने वालों के लिए दो आरामकुर्सियां रखी हैं। मेज के सामने वाली दीवार के साथ मेरा पलंग है जिसके सिरहाने लकड़ी का एक पुराना-बड़ा-सा वार्डरोब है, जिसमें सब मौसमों में काम आने वाले मेरे कपड़े, सूट, ओवरकोट और दूसरी चीजें अस्त-व्यस्त ढंग से पड़ी रहती हैं।

बीच वाले कमरे का अस्तित्व हमेशा बदलता रहा है। शुरू के सालों में बीच के कमरे से हमने बैठक का काम लिया था। बाद में वह मात्र स्टोर रह गया था जहां रम की खाली बोतलें, टीन के डिब्बे, रद्दी अखबार, बेकार जूते, टूटी-फूटी बेतनी और चाय के ग्रीन लेबल डिब्बे भर दिए गए थे। एक बार तो विभू की सुरुचि से ड्राइंगरूम संवारने की सनक सवार हुई थी। तब इस कमरे को बहुत अच्छी तरह सजाया गया था।

विभू का कमरा इस मकान का सबसे खूबसूरत कमरा कहा जा सकता है। मैं लापरवाही में बुझा हुआ सिगरेट या

पूरी तरह से उतार देना चाहता था। पीछे से आकर बांहों में भरते हुए मैंने उसे सीधा कर दिया था। वह कितना पास थी! उन दिनों पहाड़ भी इतने ठंडे नहीं हुआ करते थे।

बनावटी गुस्से से विभू ने टोका था, "तुम हमारे कमरे में किसकी इजाजत से दाखिल हुए?"

दरवाजे की ओर मुड़ दहलीज पर खड़े होते हुए याचना के स्वर में मैंने कहा था, "मेम साहब की इजाजत हो तो मैं अन्दर आ जाऊं!"

आज अपनी वह हरकत कितनी भोंडी जान पड़ती है! वर्षों पुरानी वह बात आत्मग्लानि की छोटी-छोटी; पर खत्म न होने वाली घटनाओं की लम्बी शृंखला में बार-बार आकर सामने खड़ी हो हिला जाती है और विभू अब जो मात्र औपचारिकता-वश सिलसिलेवार दिनचर्या को चलाने में उत्सुक लगती है, उस समय कैसे मेरे गले में बाजू डाल झूल गई थी! सम्भवतः उन दिनों को वह पूरी तरह भूल चुकी है।

10901

एक साथ जब कई प्रश्न उठकर सामने आ खड़े होते हैं, तो किसी एक का भी उत्तर न खोज पाने की असमर्थता में आदमी नये सिरे से सोचना शुरू कर देता है। एक बिन्दु के आसपास घूमते वह किसी भी तह पर नहीं पहुंच पाता।

विभू के आने के बहुत पहले से ही दाम्पत्य जीवन चौपट हो चुका था। ऐसा संकट मैं समझता हूं, अधिकांश लोगों के जीवन में घटित होता है, जब उन्हें चुनाव की सावधानी...(रि)स्थिति से गुजरना पड़ता है। किसी स्त्री के साथ जब आदमी वर्षों के पांच वर्ष बिता चुका हो, तो उसे छोड़ने की बात आसानी से

कि मैं उसके साथ बंधा रहूं और मेरे सामने उसको छोड़ अन्य कोई विकल्प न रहने पर भी अपनी इच्छानुसार वह कहीं भी चल देती।

हमारे विवाहित जीवन का वह पहला ही वर्ष था। बच्ची उसके पेट में आ चुकी थी। इतने शीघ्र वह शायद तैयार न थी। जो कुछ हुआ था सम्भवतः हम लोगों की अनुभवहीनता के कारण हुआ था। पहली प्रतिक्रिया मेरी भी घबराहट की थी। कई दिन तक तनाव भरा रहा था, फिर यथास्थिति को स्वीकार करते हुए मैं तटस्थ हो गया था।

अकसर जब शुभदा खीझलाहट में मुझे दोष देती या शीघ्र ही कुछ करने को कहती, तो मैं मुसकरा देता। मेरे मुसकराने पर उसकी झल्लाहट और भी बढ़ जाती।

खीझते हुए कहती, "शर्म नहीं आती तुम्हें। मुझे फंसाकर तमाशा देख रहे हो।"

फिर उसकी झल्लाहट दहशत में बदल गई थी और उसने डाक्टर के पास चलने को कहा था। हमारी पूरी बात जानकर डाक्टर को आश्चर्य हुआ था। विमुक्ति की हानियां और हमारे नवविवाहित होने के कारण बच्चे की आवश्यकता पर उसने लम्बा भाषण दे डाला था।

मैं सहमति में सिर हिलाए चला जा रहा था; पर शुभदा का पारा चढ़ता जान पड़ा था। उसने अधीर होते हुए पूछा था, "मैं ऐसी कितनी ही स्त्रियों को जानती हूं, जो आए दिन सफाई करवाती हैं।"

"पर आप यह तो नहीं जानती कि उनमें से अधिकांश लौटकर हमारे पास आती हैं। उसमें आगे बहुत झंझट पैदा होते हैं।" डाक्टर ने विजयी मुसकान के साथ कहा था।

बाहर निकलते हुए मैंने कहा था, "जो हो गया सो ठीक है।"

तुम्हें ठीक लगता है न ! मैं इतनी जल्दी नहीं मर सकती। अगर बच्चा पैदा करते हुए मैं मर गई, तो तुम्हारा क्या बिगड़ेगा ? तुम तो चाहते ही यही हो। जान तो मेरी जाएगी।"

"एक तुम ही ऐसी औरत हो न, जो मर जाओगी।"

"मैं औरत हो गई हूं, इसके-ई के कारण। मुझे इस डाक्टर की एक भी बात ठीक नहीं जान पड़ती। देख रहे थे, कैसे चुड़ैलों की तरह हंस-हंसकर बातें कर रही थी। किसी दूसरे डाक्टर के पास चलो।"

"मुझे अब किसी डाक्टर के पास नहीं जाना।" मैंने दृढ़ता से कहा था।

"ठीक है। तुम क्या समझते हो मैं तुम पर ही निर्भर हूं ? मैं ···मैं तुम्हारे बगैर कहीं जा ही नहीं सकती भला ?"

सहसा मैं चुप रह गया था। मेरे बगैर या मेरे साथ··· उसके निर्णय से मुझे कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ने वाला था, फिर भी वह पूरा दिन अजीब उथल-पुथल में बीता था। मेरी भूख एकदम मर गई थी और मैं चुपके से धूप में जाकर लेट गया था।

सुभद्रा अपने काम में लग गई थी। मैंने सोचा था, अलग होते ही बम्बई चला जाऊंगा। स्थायी रूप से वहीं रहने लगूंगा। वहां ढंग के लोगों की हमेशा मांग रहती है। उन पांच वर्षों में मेरे अन्दर यही बात घर कर गई थी कि स्वतन्त्र होने पर मैं अपनी योजनाओं को नये सिरे से शुरू कर पाऊंगा।

धूप समाप्त होने पर ठंड लगनी रही थी और मैं सिर पर हाथ रखे पड़ा रहा था। उठने की सोचने पर भी शिथिलता हावी हो उठती और तोड़-फोड़ की बातें मस्तिष्क में चक्कर [illegible] थीं।

सुबह से ही मौसम अजीब-सा हो रहा था। धुंध की वजह से समय का सही अनुमान न हो पाने के कारण भी सब कुछ अटपटा हो उठा था। बीच-बीच में सूर्य बादलों को धोखा देता भी, तो धूप इतनी फीकी और पीली-सी निकलती कि घुटन ही होती। सारा-सारा दिन यूं ही पड़े-पड़े बीत जाता और थोड़ी देर के लिए किसी के यहां जाने का मन होता।

मेरी सहमति की आवश्यकता महसूस किए बगैर शुभदा दूसरे डाक्टर के पास चल गई थी और मनमानी कर ली थी। जैसे कुछ हुआ ही न हो। मैं एकदम चुप रह गया था। अपनी इच्छा उस पर लादना एक प्रकार से व्यर्थ जान पड़ता। मैंने बेहद अपमानित महसूस किया था। पहले डाक्टर की राय की अवहेलना और मेरे पूछे बगैर चलने के शुभदा के आचरण ने मुझे आघात-सा दिया था। संयम के बावजूद मैं असहाय-सा हो उठा था। मेरे आहत होने का शुभदा को कोई आभास नहीं हुआ। इसलिए नहीं कि मैंने अपनी भावना उस पर प्रकट नहीं होने दी, वह इतनी लापरवाह प्रकृति की थी कि गम्भीर बातें कम ही समझ पाती। अपनी सफलता के गर्व से और भी उन्मुक्त हो उठी थी। परिणाम यह हुआ कि तीन महीने के अन्दर ही वह दोबारा अपनी कैद में स्वयं ही फंस गई।

जिस समय हम अलग हुए बच्ची तीन वर्ष की थी। बच्ची को लेकर बहुत बड़ा विवाद उठ खड़ा हुआ था। शुभदा बच्ची का उत्तरदायित्व लेने को तैयार न थी। सम्भवतः बच्ची उसकी भावी योजनाओं के लिए रुकावट का काम करती। लगभग उन्हीं कारणों से मैं भी बचना चाहता था।

मैंने कहा था, "तुम कैसी मां हो?"

"बच्चे बनाने की रट तुम्हें थी, मुझे नहीं।"

"बच्ची के प्रति अपने उत्तरदायित्व से मैं भागता नहीं हूं; पर अभी इसे तुम्हारी आवश्यकता है। कुछ बड़ा हो जाने दो,

३

ऐसी शाम इस घाटी में रोज उतरती है। घाटी में अंधकार उतर चुका होता; पर पहाड़ों पर सूर्य की सुनहरी किरणें जाते-जाते भी उजाला किए रहती हैं। इन अंतिम किरणों की झुर-मुट बारह वर्ष के बावजूद मेरे लिए विस्मय ही बनी रही थी। किरणों के सुरमई पागलपन से उद्वेलित होकर ही शायद लोग इस घाटी में टिक नहीं पाते। समय और धुंध जंग की तरह हर किसी को खाने के लिए शनैः-शनैः बढ़ते रहते हैं। धुंध की गहरी पर्तों के मध्य छोटी-छोटी भूलें याद आती रहतीं और आश्चर्य होता कैसे यथास्थिति से निर्विकार रूप से हम समझौता करते चले जाते हैं। संभवतः हम लाचार होते हैं।

अपनी और विभू की स्थिति मुझे उन अपराधियों की तरह जान पड़ती, जिन पर बे-बुनियाद अभियोग आरोपित कर आ-जीवन कारावास का दंड सुना दिया गया हो। ऊपरी तौर पर सब कुछ सीधा और सपाट चल रहा था। इस घाटी के खालीपन में ऊपर-नीचे आना-जाना ही शेष जीवन रह गया था।

शुरू-शुरू में लग रहा था, जैसे बहुत अच्छी जगह पहुंच गए थे। आसपास ऊंची-नीची पहाड़ियों और गहुंमुमा घाटियों ने विभू को तो बहुत ही आकर्षित किया था। शुभदा या विभू का

तब मैं ले जाऊंगा।"

"तुम चाहते हो मैं इसके लिए अपना भविष्य नष्ट कर लूं?"

"इसे भी तो भविष्य की आवश्यकता है?"

"इसके भविष्य से मुझे कोई मतलब नहीं।"

अपनी समस्याओं को अपने तक ही सीमित रखने का हामी होने के बावजूद हमें कानून की मदद लेनी पड़ी थी और बच्चों का संरक्षण शुभदा को लेना पड़ा था। मैं बम्बई चला गया था। उन वर्षों के भटकाव की भी अलग कहानी है।

३

ऐसी शाम इस घाटी में रोज उतरती है। घाटी में अंधकार उतर चुका होता; पर पहाड़ों पर सूर्य की सुनहरी किरणें जाते-जाते भी उजाला किए रहती हैं। इन अंतिम किरणों की झुर-मुट बारह वर्ष के बावजूद मेरे लिए विस्मय ही बनी रही थी। किरणों के सुरमई पागलपन से उद्वेलित होकर ही शायद लोग इस घाटी में टिक नहीं पाते। समय और धुंध जंग की तरह हर किसी को खाने के लिए शनैः-शनैः बढ़ते रहते हैं। धुंध की गहरी पर्तों के मध्य छोटी-छोटी भूलें याद आती रहतीं और आश्चर्य होता कैसे यथास्थिति से निर्विकार रूप से हम समझौता करते चले जाते हैं। संभवतः हम लाचार होते हैं।

अपनी और विमू की स्थिति मुझे उन अपराधियों की तरह जान पड़ती, जिन पर बे-बुनियाद अभियोग आरोपित कर आ-जीवन कारावास का दंड सुना दिया गया हो। ऊपरी तौर पर सब कुछ सीधा और सपाट चल रहा था। इस घाटी के खाली-पन में ऊपर-नीचे आना-जाना ही शेष जीवन रह गया था।

शुरू-शुरू में लग रहा था, जैसे बहुत अच्छी जगह पहुंच गए थे। आसपास ऊंची-नीची पहाड़ियों और भूल-भुलैया घाटियों ने विमू को तो बहुत ही आकर्षित किया था। घूमना या विमू का

२

ऐसी शाम इस घाटी मे रोज उतरती है। घाटी में अंधकार उतर चुका होता; पर पहाड़ों पर सूर्य की सुनहरी किरणें जाते-जाते भी उजाला किए रहती हैं। इन अंतिम किरणों की झुर-मुट बारह वर्ष के बावजूद मेरे लिए विस्मय ही बनी रही थी। किरणों के सुरमई पागलपन से उद्वेलित होकर ही शायद लोग इस घाटी में टिक नहीं पाते। समय और धुंध जंग की तरह हर किसी को खाने के लिए शनैः-शनैः बढते रहते हैं। धुंध की गहरी पर्तों के मध्य छोटी-छोटी भूलें याद आती रहतीं और आश्चर्य होता कैसे यथास्थिति से निर्विकार रूप से हम समझौता करते चले जाते हैं। संभवतः हम लाचार होते हैं।

अपनी और विभू की स्थिति मुझे उन अपराधियों की तरह जान पड़ती, जिन पर बे-बुनियाद अभियोग आरोपित कर आ-जीवन कारावास का दंड सुना दिया गया हो। ऊपरी तौर पर सब कुछ सीधा और सपाट चल रहा था। इस घाटी के खाली-पन मे ऊपर-नीचे जाना-आना ही शेष जीवन रह गया था।

शुरू-शुरू में लग रहा था, जैसे बहुत अच्छी जगह पहुंच गए थे। आसपास ऊंची-नीची पहाड़ियों और गड्ढे नुमा घाटियों ने विभू को तो बहुत ही आकर्षित किया था। शुभदा या विभू का

कहीं कोई ठौर नहीं था। दोनों के गार्हस्थ्य में आने से पहले ही कुछ ऐसा अहसास हो गया था कि मेरे जीवन की रिक्तता को महसूस किया जा सकता था।

इस शादी में आने के बहुत पहले से ही सब कुछ बुझा-बुझा लगने लगा था। रहने का कोई अर्थ ही न महसूस होता। कुछ लोग युद्ध ही में बाजी हार बैठे हैं। कुछ लोग लड़ने और उठने का साहस करते रह जाते हैं। उनका प्रयत्न कितना बेमानी होता है। शादी में आने के बाद भी विभू भी उसी ठंडेपन का शिकार हो गई थी। उसे भी मैंने अपनी ही तरह इच्छाओं को कुण्ठ करार देने के निर्णय से लड़ते पाया है। स्थिति को सुधारने का जुनून जो अक्सर उस पर आ सवार होता था। अब उसे हमेशा के लिए कुचल डालने की लड़ाई विभू के अन्दर भी प्रारम्भ हो गई थी। कमजोर न पड़ने के निर्णय और प्रयत्न में भी हम अन्दर-ही-अन्दर भुरभुरा जाते हैं और पता नहीं चलता।

विभू के बारे में कुछ भी कहना कितना कठिन है! अपने-आप में सिमट जाने में वह पूरी तरह से समर्थ है। दूरी बनाए रखने की उसकी आदत के कारण भी मुझे उस पर गुस्सा आता। बहुत कुछ छिपा जाने के कारण ही सम्भवतः बहुत-सी स्थितियाँ उत्पन्न होने से बच गई थीं। बौखलाहट होने पर एकमात्र चुप्पी साध लेना मैंने विभू से ही सीखा था।

आदमी का अवरोध कितना नकली होता है! सारे उपचार और सावधानी के बावजूद परिवर्तन टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं के रूप में हमारे चेहरे पर अंकित हो जाता है। स्वयं में हो रहे परिवर्तन के प्रथम साक्षी होने के बावजूद हम उसे झुठलाते रहते हैं और ऐसे बने रहते हैं, जैसे कुछ भी न बदला हो। एक तरह की सफाई से हम स्वयं को धोखा देते रहते हैं।

विभू की देह इन बारह वर्षों में शनैः-शनैः सिकुड़ती रही है।

बिलकुल नयी मंजिमा की तरह जान पड़ता रहा है, जिसे पहले कभी न तो मैंने देखा है और न ही महसूस किया है। ऐसे में हर बार मेरे अन्दर के उस क्रूर अजनबी ने विभू के साथ नये सिरे से बलात्कार किया है।

मुआयना-सा करते हुए विभू ने पूछा था, "यहाँ अंधेरे में बैठे क्या सोच रहे हो ?"

"तुम्हारी राह ही देख रहा था।"

पूरा दिन वह बाहर रही थी। कैम्प गई होगी। कैंटीन से खरीदी चीज़ों से भरा उसका बैग जमीन पर रखा था। उसे देखने की जिज्ञासा को मैंने दबा डाला था। हलके मेकअप में जो दिन-भर की धूप से मद्धिम-सा पड़ गया था, विभू कुछ अजनबी-सी हो गयी थी। मेरे अन्दर का वह अजनबी तनकर खड़ा हो गया था मात्र इतने-से को देखकर ही। उसकी इच्छा हो रही थी सामने से जाकर विभू के चेहरे को हथेलियों में भरकर गौर से देख तय करे कि वह पहले से वास्तव में ही अधिक खूबसूरत हो उठी है। अपने अन्दर के उस अजनबी की क्रूरता को रोकने के प्रयास में मैंने सुबह उठते समय के विभा के चेहरे को याद करने की कोशिश की थी। लगा था सुबह जो वह पीली-पीली और भद्दी जान पड़ी थी मात्र मेरा भ्रम था।

कपड़े बदल वह पलंग पर जा लेटी थी। थककर आने के बाद अकसर वह थोड़ी देर के लिए आराम करती है। मुझे लगा था, विभू के कमरे में मेरा काम समाप्त हो गया है और मुझे मुझे लेना चाहिए, पर मेरे अन्दर के उस अजनबी ने मेरे पांवों को जकड़ लिया था। पीछे से आकर वह पलंग पर बैठ गया था, फिर उसने धीरे से हाथ विभू के गाल पर रख दिया था। विभू ने विरोध नहीं किया। मेरे अन्दर का तनाव शायद [illegible] गया था और संशयरहित होते हुए मैं आगे बढ़ गया था। [illegible] ने फिर भी विरोध नहीं किया था। हर बार को विभू [illegible] अपनी

ाय के रूप में लिया है। मेरे अन्दर के उस अजनबी के चेहरे
झलकने वाले लक्षण पढ़ने में विभु लगता है निपुण हो गई
वह भी मन्द-मन्द मुसकराती रही थी।

जहां तक मेरा स्वयं का प्रश्न है मैं बेहद सहज किस्म का
र्मी हूं। तमाम असमानताओं और क्रूरताओं का उद्गम मेरे
र पलने वाले उस क्रूर अजनबी में है। जहां तक मेरा
न्ध है एक जड़ और सामान्य जीवन में लम्बे अरसे के लिए
ट सकता था। शायद शुभदा के साथ ही मैं एक लम्बा, कभी
माप्त होने वाला सम्बन्ध बनाये रख सकता था। इन बारह
के अन्तराल के बाद जब कभी शुभदा के बारे में सोचता हूं,
लगता है, जैसे कभी कोई सम्बन्ध जुड़ा ही न था।
इतनी लम्बी अवधि आदमी को निर्विकार रूप से सोचने
अवसर प्रदान कर देती है। सम्भवतः उन पांच वर्षों के जीवन
कोई अर्थ शेष नहीं रह गया। न मेरे लिए न शुभदा के लिए।
सामना होने पर नितान्त अजनबियों की तरह बिना एक
रुके हम अपनी-अपनी राह चल दें या शायद एक क्षण
क एक-दूसरे को देखते ठिठक जाएं और फिर दूसरे ही क्षण
यलेपन में आंखें चुराने का प्रयत्न करें और घृणा से होंठ
ोड़ते हुए मुंह मोड़ लें। यह सब स्थितियां हैं। समूचा जीवन
तियों से बनता है। कोई-एक स्थिति इतनी महत्त्वहीन भी
सकती है कि हम उसे तुरन्त भुला डालें। कोई-कोई स्थिति
भी होती है, जो हमारे समूचे जीवन का रुख बदल डालती
स्थितियों से बचने के भरसक प्रयास में भी हम बच नहीं

बावजूद असहाय होकर रह जाएं, ऐसा भी हो सकता है।

इतना सोचने की पहले कभी जरूरत ही महसूस नहीं हुई थी। ऐसे मोड़ चले आते हैं कि सोचने-समझने का महत्त्व ही नहीं रह जाता।

बाहर एक और सांझ उतर आई है। धूप निकलकर भी छू नहीं पाती। नजर उठते ही दृश्य बुझा-सा हो उठता है। उस पार का अंधेरा प्रतीक्षा में खड़ा-का-खड़ा रह जाता है।

"टिकू, जाओ माफी मांगो।"

"नहीं दीदी! मैं नहीं मांगूगा।"

एक ढीठ घना लड़का मुमदा की साड़ी के पीछे धंसता चला जाता है। पांच वर्ष का लड़का। जहर, नफरत और घमण्ड। अधिकार का अतिक्रमण।

"दीदी! तुम अपने अलग के मकान में कब जाओगी?"

थोड़ी देर के लिए फिजूल का गुस्सा। मुमदा पर बेमानी गुस्सा, "क्यों खड़ी हो यहां तुम? जहरीले सांपों द्वारा मेरा अप-मान क्या तुम्हारा नहीं है? कैसे बरदाश्त होता है तुम्हें?"

"बिना बात बिगड़ उठते हो। बच्चे की भी बात का बुरा मानते हैं कहीं! डैडी ने कभी कहा है कुछ? उनके सौ बार कहने पर ही तो मैं यहां रहने पर तैयार हुई थी।"

बच्चे की बात। पांच वर्ष के छोटे भोले मासूम बच्चे की बात। पराजीवी। दीदी की तनख्वाह, हमारा मकान।

"डैडी! आप चोपड़ा साहब की एक कोठी क्यों नहीं दिलवा देते हैं? मैं बड़ा होकर एक ही घर में उनके साथ नहीं रहूंगा। शादी के बाद भी दीदी इसी घर में रहती हैं। अजीब बात है!"

"तुम्हें शर्म आनी चाहिए। यही इज्जत है तुम्हारे मन में मेरे खानदान की? टिकू जहरीला सांप, डैडी कोबरा। बोलते क्यों नहीं! मैं तुम्हें शुरू से समझती हूं। तुम्हें अपने सोफिस्टी-केटेड होने का गुरूर है। मैंने भी कभी किसी के सामने घुटने नहीं

विजय के रूप में लिया है। मेरे अन्दर के [illegible]
पर झलकने वाले लक्षण पढ़ने में विभु सफल है निपुण हो गई
है। वह भी मन्द-मन्द मुसकराती रही थी।

"जहाँ तक मेरा स्वयं का प्रश्न है मैं बेहद सहज [illegible]
...मी हूँ। तमाम असमानताओं और क्रूरताओं का उद्गम मेरे
अन्दर पलने वाले उस क्रूर अजनबी में है। जहाँ तक मेरा
मन्तव्य है एक जड़ और सामान्य जीवन मैं लम्बे अरसे के लिए
घसीट सकता था। शायद शुभदा के साथ ही मैं एक लम्बा, कभी
न समाप्त होने वाला सम्बन्ध बनाये रख सकता था। इन पाँच
वर्षों के अन्तराल के बाद जब कभी शुभदा के बारे में सोचता हूँ,
तो लगता है, जैसे कभी कोई सम्बन्ध जुड़ा ही न था।

इतनी लम्बी अवधि आदमी को निर्विकार रूप से सोचने
का अवसर प्रदान कर देती है। सम्भवतः उन पाँच वर्षों ने ओर
का कोई अर्थ शेष नहीं रह गया। न मेरे लिए न शुभदा के लिए।
कभी सामना होने पर नितान्त अजनबियों की तरह बिना एक
बात कहे हुए अपनी-अपनी राह चल दें या शायद एक आध
[illegible] लिए जाते हों।

बावजूद असहाय होकर रह जाएं, ऐसा भी हो सकता है।

इतना सोचने की पहले कभी जरूरत ही महसूस नहीं हुई थी। ऐसे मोड़ चले आते हैं कि सोचने-समझने का महत्त्व ही नहीं रह जाता।

बाहर एक और सांझ उतर आई है। धूप निकलकर भी छू नहीं पाती। नजर उठते ही दृश्य बुझा-सा हो उठता है। उस पार का अंधेरा प्रतीक्षा में खड़ा-का-खड़ा रह जाता है।

"टिकू, जाओ माफी मांगो।"

"नहीं दीदी ! मैं नहीं मांगूगा।"

एक ढीठ बना लड़का शुभदा की साड़ी के पीछे धंसता चला जाता है। पांच वर्ष का लड़का। जहर, नफरत और घमण्ड। अधिकार का अतिक्रमण।

"दीदी ! तुम अपने अलग के मकान में कब जाओगी ?"

थोड़ी देर के लिए फिजूल का गुस्सा। शुभदा पर बेमानी गुस्सा, "क्यों खड़ी हो यहां तुम ? जहरीले सांपों द्वारा मेरा अपमान क्या तुम्हारा नहीं है ? कैसे बरदाश्त होता है तुम्हें ?"

"बिना बात बिगड़ उठते हो। बच्चे की भी बात का बुरा मानते हैं कहीं ! डैडी ने कभी कहा है कुछ ? उनके सौ बार कहने पर ही तो मैं यहां रहने पर तैयार हुई थी।"

बच्चे की बात। पांच वर्ष के छोटे भोले मासूम बच्चे की बात। पराजीवी। दीदी की तनख्वाह, हमारा मकान।

"डैडी ! आप चोपड़ा साहब की एक कोठी क्यों नहीं बनवा देते हैं ? मैं बड़ा होकर एक ही घर में उनके साथ नहीं रहूंगा। शादी के बाद भी दीदी इसी घर में रहती हैं। अजीब बात है !"

"तुम्हें शर्म आनी चाहिए। यही इज्जत है तुम्हारे मन में मेरे खानदान की ? टिकू जहरीला सांप, डैडी कोबरा। बोलो क्यों नहीं ! मैं तुम्हें शुरू से समझती हूं। तुम्हें अपने सोफिस्टीकेटेड होने का गुरूर है। मैंने तो कभी किसी के सामने घुटने नहीं

तरह से नदारद होते हैं, एक प्रकार की मजबूरी होती है। ऐसा नहीं कि बड़ी-बड़ी बातों की उनके पास कमी होती हो। 'फेमिना' और 'ईव्ज वीकली' से उठाए गए मुहावरों को उछालने में खर्च ही क्या होता है? अधिकांश प्रकाशनों के रिव्यू पढ़कर शुभदा आसानी से उन पर बहस कर लेती। हर बात पर निजी जानकारी होने का दावा करना भी एक गुण होता है।

उन तमाम यातनाओं का ढोना मेरे लिए बहुत ही कठिन काम था। एक ऐसे व्यक्ति के अन्दर वे उमंगें भर दी गई थीं जिसके लिए संभावनाओं की कोई गुंजाइश न रखी गई थी। कुछ अधूरी महत्वाकांक्षाएं, जिन्हें ढोने का कोई आधार न था। छिन्न-भिन्न क्रमरहित कहीं कोई ऐसा सूत्र न था, जिससे आगे का रास्ता साफ होता हो। अन्दर से खाली कोई आदमी जब बाहर भी ऐसे लोगों से घिर जाता है, जिन्हें कुछ भी समझना कठिन हो, तो बहुत मुश्किल पड़ती है। मैं अच्छी तरह समझ चुका था कि शुभदा से मुक्ति प्राप्त किए बगैर कोई चारा नहीं था। कब? कैसे? इस बात का मेरे लिए कोई महत्त्व नहीं था।

वह मेरे सामने बैठी होती और मैं विनाशकारी कल्पनाओं में खोया छुटकारे की सम्भावनाओं पर गौर करता रहता। कमरे में एक सिरे से दूसरे तक का चक्कर लगाते न जाने कितनी-कितनी देर घुटना चला जाता। बात-बेबात।

भूलना अच्छी आदत होती है; पर कुछ याद रखने के लिए भी होना चाहिए।

बाहर अन्धकार उतर आया था। हमेशा की तरह मैं स्वयं को कमरे में अकेला पाता हूं।

विमू सामने से चुपचाप निकल जाती है। अन्दर क्यों नहीं आ गई? एक प्रश्न टकराकर लौट जाता है। कभी भी आंखें दुखने लगती हैं। सर के आधे बाल सफेद हो गए हैं। सर में उन बालों को टटोलते मां का चेहरा सिकुड़ जाता।

"इतने सफेद बाल तो मेरे सिर में भी नहीं हैं। तुझे हुआ क्या है रे! कुछ नहीं बताएगा? मैं जानती हूं तुझे। क्या सोचता रहता है? बाहर रह-रह तेरी सारी आदतें बदल गई हैं। इतना चुप मेरे बच्चों में से कोई भी नहीं है। तेरे बेटे को होस्टल नहीं जाने दूंगी। ताई के यहां गया है कभी…बलवंत बहुत नाराज है…माल रोड पर कोठी बना ली है उसने…सारा शहर 'चोपड़ा साहब…चोपड़ा साहब' करता है। जिला कांग्रेस का मंत्री बन गया है। किसी दिन हो आना। मैं भी चलूंगी।"

प्रश्न जुबान पर आते रुक जाता है, "तू भाई के पास क्यों नहीं रहने लगती, मां! वहां तेरा बुढ़ापा चैन से कट जाएगा।"

फिर एक चुप्पी। मां और भी न जाने क्या कुछ कहती-पूछती चली जाती है, "याद है पिछली नौकरी लगने पर तूने मुझे कश्मीरी शाल लाकर दी थी। दूसरी नौकरी लगने पर घर के लिए कुछ भी नहीं लाया, फिर तीसरी नौकरी और अबकी फिर चौथी।"

आम लोगों की केवल एक ही नौकरी लगा करती है और वह केवल एक ही बार। बस पहली तनख्वाह मां के लिए होती है।

मां जैसे भार गई हो।

"अब तू हर महीने मेरा कुछ बांध दे, कितनी छोटी रकम हो सही।"

"छोटी क्यों मां! मैं तुझे हजार रुपया महीना भेजना चाहता हूं।" और एक बदरंग ठहाका।

"मजाक करता है मां के साथ? तुझे होस्टल भेज मैंने नहीं

कमाई की !"

न···न करने के बावजूद मुनव्वर विलास थमा देता है। अन्दर का भाव आँखों की राह झलक आने को होता है। आत्मीयता की कुछ लहरें। "थोड़ा—लिव फार योर सेल्फ। खूबसूरत चीजें आसानी से नहीं बनतीं। जिन्दगी भी एक काँटे है। आर··· या···पार। समझौते से मुझे सख्त नफरत है। वैसी जैसी तुम चाहते हैं। न बना पाने से अच्छा है, जिन्दगी को भ्रष्ट कर दिया जाए। तुम तो खुद समझदार हो। जरा-सी अड़चन पैदा होते ही कछुवे की तरह अपनी खाल में क्यों सिमटने लगते हो ? न तुम पार्टियों में हिस्सा लेते हो, न ही क्लब जाते हो।"

विमू की विश्वास भावना भी जानलेवा है, "मेरे लिए हमेशा एक ही बात नई रहती है—हम दोनों का सम्मिलित भविष्य और मैं कुछ सोच ही नहीं पाती। बन्धन बन गई हूँ। तुम मुनव्वर के साथ बम्बई चले जाओ। मुनव्वर की बहुत जान-पहचान है। सेट हो जाएगा। मुझे बिलकुल डर नहीं लगता। मैं अकेली रह सकती हूँ। बिन्नी आ जाएगी।"

एक—दो—तीन,—एक—दो—तीन,—एक—दो—तीन—चार—पाँच—छः—सात—आठ—, मुड़ो—एक—दो—तीन—आठ, फिर मुड़ो।

तुम सब सही हो। माँ तुम भी, मुनव्वर तुम भी। पर हम-शने में ही कोई भूल हुई है, मैं जंगल में भटक जाता हूँ, जहाँ मुझे काँटे-झाड़ियाँ और अड़चनें दिखाई देती हैं, उस जगह पर तुम लोग जाने-पहचाने रास्ते की तरह बढ़ जाते हो। दर्द से सर फटा जा रहा है।

एक—दो—तीन,—एक—दो—तीन।

"मैं जब तक लौटूं तुम यहां रह लोगी ?"

बिन्नी बात को बीच ही में काट देती है, "भाईजी ! यहाँ कोन नहीं रह लेगा ! कितनी खूबसूरत है यह घाटी और फिर

विभू और तुम। तुम लोग ढूँढोगे इस खूबसूरत जगह पर रहोगे और बेचारी बिन्नी मेहमानों की तरह कब आई और कब गई। सुना है, यहाँ पानी के कटोरे के लोग साल में एक बार नंगे होकर नाचते हैं। तुम लोगों ने तो देखा होगा।'

मन घटा जा रहा है। मैं डिटान की एक ही टिकिया खाती हैं। जैसे जले गोश्त नीचे सरकती है एक रास्ता बनता चला जाता है। पेट से उतरकर सीधी जलन धीरे-धीरे सीने की ओर बढ़ने लगती है।

एक—दो, एक—दो, एक···आठ, नौ।

दर्द और जलन गायब। धुँध और झुनझुनाहट। खाने के लिए कौन-सी जगह सबसे बेहतर होगी! कभी जब बिन्नी आई होती तो विभू को पूरी राहत मिल जाती। किचन का चार्ज उसी के हवाले हो जाता। विभू बेखबर दिन चढ़े तक पलंग के बीचो-बीच तकिए में मुँह दिए पड़ी रहती। कमरा अस्त-व्यस्त अपने गुमरे रूप की प्रतीक्षा करता रहता। साइड-बोर्ड पर रखे काँसे के भेड़िए के कान उन दिनों ज्यादा ही ऊपर उठे दिखाई पड़ते। मेरा भ्रम भी हो सकता था। जब कभी भी मैंने भेड़िए की तरफ गौर से देखा, हर बार उसकी मुद्रा बदली हुई जान पड़ती। अचानक सीध में देखती आँखें एकदम प्रहार-सा करती प्रतीत होतीं। कान सतर्कता से खड़े दिखाई देते और लगता अभी अजनबी गंध को सूँघता हुआ कूद पड़ेगा।

बिन्नी और विभू साथ-साथ पढ़ी थीं। छुट्टियों में कुछ दिन के लिए आती है, तो बीच के कमरे में हलचल होने लगती है। विभू खुद कमरे को साफ करती, फालतू सामान को पहाड़ी लोगों में बाँट देती और बुड़बुड़ाती रहती कि मैं बीच के कमरे को मेन-टेन करने में कोई रुचि नहीं रखता। बिन्नी आती तो तीनों कमरों में संचार सूत्र कायम हो जाता। शरारत से बीच के, कभी मेरे और कभी विभू की ओर के दरवाज़े को खटखटाकर

दोनों को बीच वाले कमरे में बुला लेती। मुनव्वर भी दो एक बार बीच के कमरे में रह चुका था; पर वह ज्यादातर शराब पीकर खर्राटे भरने का आदी था। कभी-कभी दिन में हम लोग बैठते तो बड़ी-बड़ी योजनाएं, बम्बई के किस्से और अपनी महत्वाकांक्षाओं के ब्यौरों के मध्य हंसी का हलका-फुलका माहौल पैदा किए रहता।

मुनव्वर को छेड़ते हुए विभू कहती, "तुम्हारी भाग-भाग का आखिर कोई लाभ भी है?"

मुनव्वर ठहाका लगाकर हंस पड़ता, "वही पुरानी बात। घाटी के बाहर निकलकर देखो, दुनिया कितनी बड़ी है। असल दोष खोपड़ा का है। उसकी भगोड़ी प्रकृति का तुम्हारे ऊपर भी घातक प्रभाव पड़ रहा है।"

"कुछ सीमित लक्ष्यों को प्राप्त कर संतोष कर लेने से ही सही जिन्दगी बनती है। एक निश्चित आयु के बाद बड़ी योजनाओं के मंसूबे बनाना बन्द कर देना चाहिए। महत्वाकांक्षा के अतिरेक में आदमी जिन्दगी को जी नहीं पाता।" विभू तर्क देती।

"खुद तो खोपड़ा जड़ है ही, तुम्हें भी···।" और ठहाका लगा जोर से हंस पड़ता, "यहां के एकरस, एकदम जीवन से तुम लोग ऊबते नहीं हो? मैं तो एक स्थान पर टिक ही नहीं पाता — बम्बई, मद्रास, बंगलौर।"

"और अब ढाका···" विभू खिलखिलाकर हंस पड़ी थी।

"बड़ा स्कोप है ढाका में। सोचता हूं एक चक्कर लगा ही आऊं।' फिर मेरी ओर मुड़ते हुए मुनव्वर कहता, "चलो, खोपड़ा! तुम्हें भी घुमा लाऊं। तुमने तो यार हिम्मत ही हार दी। तुम एक बार फिर से, नये सिरे से शुरू करो। आदमी कभी भी नये सिरे से शुरू कर सकता है।"

"हां-हां, ले जाओ इन्हें। कुछ दिन बाहर जाने से चेंज हो जायेगा।" विभू हामी भरती।

मुझे अपनी ओर देखते पाकर बिपु गम्भीर-सी बन कहती "मैंने यह सब पढ़ा है, फिर से उन्हीं पचड़ों में पड़ो; पर मुझसे लिए तो आगा ही जा सकता है। चाहो तो हम भी साथ च सकते हैं।"

मैं सोचता, अब आकर क्या होगा ? और नयी मुस्कान का ही कौन-सा अर्थ रह गया था। उन दो वर्षों में कितनी मेह-नत की थी। सब लोगों ने नया प्रयोग कहकर सराहना की थी। सब लोगों ने सहयोग और सद्भावना के आश्वासन दिए थे और जब समय आता है, एन वक्त पर लोग पीछे हट जाते हैं। सर्द मुहावरे, ठण्डी साँसें और संशय-भरी चेतावनियाँ।

स्वयं को साधने के प्रयत्न और प्रतिबन्ध कितने व्यर्थ होते हैं। सम्भलने के भरसक प्रयास के बावजूद होता वही है, जो पहले से तय होता है। ऐसे में लगता है, अपने शरीर का कोई भाग हम ज़िन्दा दफन कर चुके हैं, जो नीचे ही नीचे संघर्ष कर रहा है। कुछ ऐसा होता है, जिसे नियंत्रित नहीं किया जा सकता। तब आदमी असहाय होता चला जाता है। उस समूचे क्रम का एक अंग होना कितना बेमानी हो उठता है, जो सारी कठिनाइयों के बावजूद नियमबद्ध जीवन पर बल देता है और जिसकी पूरी एहतियात के बावजूद नियम टूटते रहते हैं।

आदमी जब निरन्तर असफल होते चला जाता है, तो उसकी विनाशकारी प्रवृत्तियाँ ज़ोर मारने लगती हैं। अक्सर हमारे द्वंद्वों के कारण कितने ओछे होते हैं ! हम स्वयं में उद्वेलित हो स्वयं का ह्रास करते रहते हैं। लम्बी-लम्बी रातें घोर सन्नाटे को महसूस करते व्यतीत हो जाती हैं। बिमू ठीक कहती है, 'कुण्ठाओं की ही यदि बात है, तो उन्हें कुचल डालना

चाहिए।"

कितने कम ऐसे अवसर होते हैं, जब स्वयं से संघर्ष न करने की जगह हम स्वयं का समर्थन कर पाते हैं। दूसरों की भावना का ख़याल रखने के लिए भी हम ख़ुद को मारते रहते हैं। जीवन का महत्त्वपूर्ण भाग हम दूसरों को जीतने और विश्वास दिलाने में खो देते हैं। कब तक चलेगा ऐसे? और उन तमाम कठिन निर्णायक स्थितियों में हम जैसे इस घाटी में आ बसे थे।

शायद दिन निकलने को था। आकाश में हल्का-हल्का उजाला फैल चुका था। बादलों के टुकड़े एक ओर बढ़े चले जा रहे थे। धुंध के पार से नीचे निरन्तर कोई तिरस्कार-भरी आँखों से घूरे चला जा रहा है। कहीं कोई दोष है, तो उसे दूर करने के लिए मैं कुछ भी नहीं कर सकता। यथास्थिति में ही बने रहना होगा। शुभदा को संभवतः जीना आता था। उसके लिए किसी चीज का भी महत्त्व न था। उसे किसी उपलब्धि में विश्वास नहीं था। अपनी इच्छा के आगे उसके लिए कोई चीज नहीं थी।

आखिर क्रम को बनाए रखने का भी क्या औचित्य होता है? हम सब आवरणों को ओढ़ मरते रहते हैं। अन्दर से भावुक होते हुए भी, व्यर्थ ही कठोर दिखने का प्रयत्न करते रहते हैं।

शुभदा ने एक बार कहा था, "कसूर तुम्हारा नहीं, तुम्हारी माँ का है। उसने तुम्हें उत्तरदायित्व समझने की भावना का पता ही नहीं चलने दिया।"

तीसे वारों के मध्य मैं चुप रह जाता, जैसे कोई हवा पास आने के बजाय सर को छूकर निकल गई हो।

"अपनी राय को तुम बहुत महत्त्व देती हो।"

"मैं ठीक कहती हूं। मैं तुम्हें खूब समझती हूं। तुम्हारे इस आभिजात्य···खोखले आभिजात्य को मैं नंगा कर न रख दूं तो···।"

४

कुर्सी पर बैठा-बैठा ऊंघने लगता हूं। दरवाजा खुलने की आहट होती है और विभू बिना मुझे अन्दर दाखिल हो जाती है। उठकर पीछे-पीछे चल देता हूँ, "कहां चली गई थीं ?"

ऊंघने लगता हूं, फिर नींद उचट जाती है। रात के सन्नाटे में गाड़ी बिना रुके स्टेशनों को पार किए चली जा रही है। एक यात्री है जिसे मध्यरात्रि किसी स्टेशन पर उतरना है। निश्चित हो सो नहीं पाता। अनिश्चय की स्थिति धीरे-धीरे आगे को सरकती रहती है। तुरन्त हल ढूंढ़ने की प्रवृत्ति हानिकारक ही तो होती है। लगातार अनिश्चय की स्थिति मे बहे चले आना भी साहस का काम होता है।

शुभदा के साथ आगे का रास्ता अवरुद्ध हुआ, फिर विभू के साथ भी प्रतिरोध हो उठा था। हम केवल अपने ढंग से चलना पसन्द करते हैं, फिर भी इच्छा न रहने पर इच्छा के नाटक करते हैं।

गाड़ी बढ़ी चली जा रही है। मीटर गेज की छोटे-छोटे डिब्बों वाली गाड़ी। शरीर के अवयवों में असह्य खलबली मच उठती है। दोनों ओर खिड़कियों के बाहर कुछ भी देख पाना संभव नहीं होता। कोई शहर आने को होता है। दूर मद्धिम-सी

टिमटिमाती रोशनियाँ दौड़ती हुई पास आने को मचलती जान पड़ती हैं और एक आदमी भागता हुआ जान पड़ता है, अपने से, अपनों से, जिन्दगी से। बहुत कुछ के बीच कुछ छिन जाने के प्रतिशोध में।

निर्माण बजरिए आत्महनन! नये सिरे से शुरू करने के बाद। एक बार, दो बार, बार-बार और फिर बारह बरस इस घाटी में। विभू के साथ। कभी लगता विभू इस सजा में व्यर्थ ही सम्मिलित हुई। अपने साथ हम कई अन्य की तबाही के भी कारण बन जाते हैं।

बिन्नो ने एक बार कहा था, "वर्षों के इस निर्वासन के बाद अब और क्या जानना है तुम लोगों को? सिलसिलेवार जिन्दगी क्यों नहीं जीते तुम लोग?"

विभू ने दृढ़ता से कहा था, "यू हैव नो राइट टु कान मवर लाइफ एक्जाइल। जिस 'वे आफ लाइफ' को हमने वर्षों जी लिया है, क्या इस बात का प्रमाण नहीं कि वह बाकायदा एक सिलसिला है, कल्चर है?"

"इतनी गहराई में जाने की क्या जरूरत है भाई!" मैंने हंसते हुए कहा था, "बिन्नी विल ऐक्ट एज ए विटनेस टु सालम-नाइजेशन। विन यू बिन्नी?"

"श्योर, पर कहो कि तुम सीरियस हो।"

"डेड सीरियस!" और मैं ठहाका लगाकर हंस दिया था।

"तुम क्या कहती हो विभू!" बिन्नी विभू की ओर मुड़ी थी।

"आई डोंट फेवर कोर्ट मैरेज।"

"दोनों मिलकर मुझे बिना रहे हो।" बिन्नी झटके से उठकर की ओर मुड़ ली थी।

फिजा में बारूद की धूल-सी फैलती जान पड़ती है और हवा के झोंकों से पेड़ों से झड़ते पत्ते दूर-दूर तक उड़ते पतंगों की तरह नाचने लगते हैं।

बारिश होते ही विभू गुमसुम बिस्तर में दुबक जाती। पिछली बार तो उसकी हालत इतनी बिगड़ गई कि मैं डर-सा गया था।

बीमारी के खर्राटे में वह बड़बड़ाती रहती। होश में आने पर उत्सुकता से प्रश्न करती, "मैं क्या बक रही थी ?"

"कुछ भी तो नहीं।"

"छिपाते क्यों हो ? तुम्हें तो नहा कह रही थी कुछ ? एक-दूसरे के सिवाय कहने के लिए हमारे पास है ही कौन ?" मेरा हाथ अपने हाथों में रख पड़ी रहती। दिन में भी अर्द्धनिद्रा की स्थिति में ऊंघती रहती। रात को भयावनी खामोशी में उसके पास बैठा होता, तो निरीहता के लम्बे साये शेरों की शकल में दौड़ लगाते जान पड़ते। बैठे-बैठे ही मैं झपकी ले लेता।

अचानक नींद टूटती तो पता ही न पड़ता कि किस कमरे में हूं। दरवाजे की ओर जाने को होता तो दीवार की ओर पहुंच जाता। भूलभुलैया में स्थिति पर गौर करता तो असहाय हो उठता। किसी प्रकार की दुविधा न रहने पर भी अक्सर मन कसमसा जाता और शंकित मन उस पत्र के विवरण पर गौर करने लगता, जो कुछ समय पहले मैदानों में से हमारा पीछा करते एक गुमनाम व्यक्ति ने किसी धार्मिक संस्था की ओर से लिखा था, 'नो दाऊ फून—लिविंग अनमेरिमोनियस्ली विद ए वुमन इन ए सिन—यू एडवेंचरिस्ट विल बी पनिश्ड—वेट।'

विभू को वह पत्र मैंने नहीं दिखाया था। कई दिन तक अशांत बना रहा था। पत्र का एक-एक शब्द रट गया था, फिर भी बार-बार निकालकर पढ़ने की इच्छा से कई दिन तक मुक्ति नहीं पा सका था। नीचे मैदानों में हजारों मील दूर बैठे लोगों

ह। कब तक अकेला होगा। ...
में रोगियों की लम्बी कतार। बरामदे के एक सिरे से दूसरे
चक्कर लगाते सारे प्रश्न फिर से दोहरा लेता हूं।

किवाड़ को थोड़ा-सा खोल अन्दर झांकने की कोशिश।
कुछ दिखाई नहीं पड़ता। पार्टीशन से सारा दृश्य छिप गया
जाता है। बाहर आकर बेंच पर बैठ जाता हूं। महुना बेंच
बहुत ही ठंडी जान पड़ती है और सुन्न होने लगता हूं। देर तक
बैठा रहता हूं।

लड़का चुपके से आकर दबी जबान में नाम पुकारता है,
"चोपड़ा साहब।"

फुर्ती से उठकर अन्दर दाखिल हो जाता हूं। डाक्टर अभ्यस्त
मुस्कान से अभिवादन का उत्तर दे, बैठने का इशारा करते हुए
पूछ लेता है, "कैसी हैं अब ?" संभवतः मिसेज चोपड़ा कहना
चाहता है।

प्रश्नों के समाधान में डाक्टर ने प्रश्न ही पूछे थे। उस डिरह
ने मेरे मस्तिष्क में खासी उथल-पुथल मचा दी थी। एक बात
आपको बता दूं। सम्भवतः आप गम्भीरता से नहीं लेंगे। घट-
नाएं अपने-आप घटित होती चली जाती हैं। उनमें सम्मिलित
होने के बावजूद हमारी स्थिति मात्र दर्शक बनकर रह जाती
है।

विभू की आयु एकदम कई वर्ष अधिक जान पड़ने लगी थी।
कभी सो सकता इतनी बड़ी औरत को कोई बर्दाश्त कैसे कर
सकता है! उतरा हुआ उसका चेहरा पीला-पीला जान पड़ने
लगा था।

सुबह ही तैयार होकर घर से निकल गई थी। बिना बताए।
बरामदे में बैठा सारे दिन प्रतीक्षा करता रहा था। डाक्टर ने
चलने के लिए सख्त मना किया था। मन-ही-मन विभू को डांटने
की इच्छा हुई थी। पूरा दिन व्यतीत हो गया। शायद कैम्प गई

हो। बिना बताए। दरवाजे में चाबी घुमाने की आवाज से चौंक गी ने ऊपर देखा था। निढाल-सी वह अपने कमरे की ओर बढ़ गई।

क्रोध-भरे स्वर में मैंने पूछा था, "कहां चली गई थी?"

"अस्पताल।" एक शब्द का उत्तर दे चुपचाप स्नान में लग गई।

अस्पताल जाने की बात सुनकर सारा आवेश जाता रहा था। अस्पताल से मतलब हमेशा कैम्प के अस्पताल से रहता था कि डाक्टर हेनियम को विभू ने मित्र बना लिया था। दुःख पानी बनकर बह-सा गया था और कुछ दिनों में विभू चुस्त हो उठी थी।

यह घाटी में आने के पहले ही वर्ष की घटना थी।

खिड़की से छनकर धूप सीधी आंखों में भर रही थी। एक और दिन बीत गया था। बारह वर्ष का समय भी कितना कम होता है! दिन बीतते रहे थे और पता भी नहीं पड़ा था। दिन कभी नहीं रुकते। हर शुरू होने वाला दिन पूरा हो बीत जाता है। भय: दिन कितना भी यातनादायी हो, रुक नहीं पाता। समय की भी मनमानी नहीं चल पाती। उसे भी निश्चित समय, निश्चित दूरी तय करनी होती है।

विभू ने नाश्ता लगा दिया था। मैं चुपचाप डाइनिंग टेबल पर जा बैठा था। परोसते समय विभू बार-बार आग्रह कर रही थी और मैं निश्चित मन से खा रहा था। अपनी स्वाभाविक मुसकान के साथ वह हंस-हंसकर बात कर रही थी। कभी जब विभू इस तरह भारमुक्त आचरण करती है, तो बहुत अच्छा

त पड़ता है।

"इधर बहुत दिन से तुम्हें मिलने कोई नहीं आया। आज म कुछ मित्रों को बुलाना कैसा रहेगा ?" मैंने सुझाव दिया ।

वह शायद एकदम तय नहीं कर पाई थी, "आज ?"

सोचने का अवसर देने के खयाल से मैंने बात को तूल नहीं या था। हम चुप बैठे रह गए थे। विभू को दूसरे लोगों के यहाँ ाना अच्छा नहीं लगता। अपने यहाँ छोटी-मोटी दावतें दे हम त्रों को बुलाते रहते।

"आज नहीं तो एक-दो दिन बाद जब भी तुम्हें सुविधा ो।" मैंने कहा था।

बारह वर्ष का जीवन समस्याओं से भारी खतरे की चिन्ता बगैर गुजर गया। समय का इतनी मजबी शिला पर कोई हरी खरोंच न आई थी। इतना भी आदमी को निश्चिन्त महसूस करने और उसे स्थगित कर देने के लिए प्रेरणा दे डालता है।

"मातृत्व स्त्री की अटल आवश्यकता नहीं होती क्या ?" अपने मन के संशय की खातिर मैंने विभू को टटोलना चाहा था।

"संभवतः नहीं। हाँ, बायोलाजिकल सच्चाई तो है ही।" रुककर पुनः कहा था।

पुरुष की स्थिति बहुत र होती है, जिसका वह अनुचित लाभ उठाता है। वास्तव में समस्या का जिम्मेदार वह होता है और दोष स्त्री के हिस्से पड़ जाता है; पर स्त्री यदि नियंत्रण का कड़ा रखे तो ?…

नियंत्रण क्या होता है ? स्त्री में क्या कम्पन नहीं होता ? उसे लोग जड़ कैसे मान लेते हैं ?

समस्या समक्ष में आ जाने पर हल भी मिल जाता है; पर

जिनके साथी होते हैं, जो समता को ममता करते हैं! ऐ
ही अन्धकार में डूबते चले जाते हैं।

बहुत दिनों बाद इत्मीनान महसूस हुआ था। विभू द्वा
दिए गए डिनर से सब कुछ प्रफुल्लित हो उठा था। उस रात
तक बैठे हम लोग हंसते रहे थे—डाक्टर मिसेज डेविड
मुनव्वर, बिन्नी, डाक्टर सेठा और कैम्प के फौजी मित्र। बी
का कमरा एक बार फिर जगमगा उठा था। खिड़की के शीशे
छनकर दीवार पर आकृतियां बन रही थीं।

कपबोर्ड से बोतल उठाते हुए विभू जोशी से पूछ उठी थी
"इसी का इन्तजार कर रहे हैं न आप लोग? कैसे लेंगे..."नीट"
या पानी के साथ?"

"नीट!" मुनव्वर ने कहा था, "जब मैं घर बसाऊंगा और
पैसा बना लूंगा, अपनी कैबिनेट में केवल बाट ६९ की कतार
सजाकर रखा करूंगा।"

"और तब तुम्हारे आर्ट के एक्जीबिशन समाप्त हो चुके
होंगे।" बिन्नी ने चुटकी ली थी।

डाक्टर सेठा ने जब से पाइप निकाल लिया था और सर
नीचा कर पीते रहे थे।

"भूख लग आई होगी।...कुछ लाऊं आप लोगों के लिए?"
विभू ने उठने का उपक्रम किया था।

"बैठो... बैठो।" मुनव्वर ने कोट की जेब से कागजों का
पुलिंदा निकालकर मेज पर बिछा दिया था। उसकी आंखें नम
हो आई थीं। पीने के बाद उसके गाल लाल होने लगते, "मेरे
ख्यालों के कुछ नये नमूने।"

कभी भी कोई भी आदत बदली जा सकती है।

यहां घाटी का मौसम भी अपने मन की ही तरह था। अभी धूप और अभी छांव। खिड़की का शीशा सहसा चमक उठता था। धूप में चलने के लिए एक बार फिर मन मचल उठा था। शुरू से ही बहुत धूपे मन का एक व्यक्ति। यही कारण था कि परिस्थितियां हाथ से निकलती गईं और कभी संभाल नहीं पाया।

समय भी कभी-कभी ठहर जाता है। भागते हुए वक्त से हमेशा घबराहट होने लगती है। जब कभी समय भी अपनी ही तरह ठहर जाता, तो सुखद स्थिति पैदा हो जाती। अजनबी शहर के लोगों में तो समय अक्सर स्थिर ही रहता है। यहां अधिक लोग जानते भी तो नहीं। गिने-चुने कुछ नाम।

बीच में स्थिति कितनी असहनीय होती है। बचना चाहकर भी हम नहीं बच पाते। पुराने परिचित और मित्र और अपना शहर और अपने लोग और अपनी धूप और अपनी झील और अपना आकाश। तीव्र इच्छा होती उन सबमें लौट जाने की।

धूप का नम स्पर्श अच्छा लग रहा था। मफलर लपेटते हुए मैं बरामदे में पहुंच खड़ा रह जाता हूं। क्षणांश के लिए निर्विघ्न महसूस हुआ था। लोगों से दूर यहां केवल अपने लिए जीना—अनेकानेक व्यवधानों से मुक्त जीवन नहीं? प्रश्न मस्तिष्क से जा टकराया था। दूसरों को अपने जीवन में सम्मिलित कर व्यर्थ हम स्वयं को बंधन में डालते हैं। उनसे अपनी तुलना और ईर्ष्या में हम अपना कुछ खो देते हैं, जबकि उनको हमारी ऊहापोह का आभास भी नहीं हो पाता।

शुभदा के प्रति मेरे रुख में कहीं-न-कहीं मेरा अपना दोष भी था। पांच वर्षों की लम्बी अवधि कैसे उसके साथ कट पाई थी? सोचता हूं, तो आज भी हैरत होती है। उससे मुझे सामान्य [illegible]। अपेक्षाएं क्यों रही थीं? चाबी खतरों का डर हमें

कितने-कितने रास्तों पर भटके हैं। शुभदा ने बोलना बंद कर दिया है। बात करना भी गवारा नहीं। मैं ढूंढता हूं। इधर-उधर बच्चों को अकेले पा ऊपर उठा लेता हूं। जी चाहता है उन्हें कसकर भींच लूं। उनके गालों को अपने गालों से रगड़ता हूं। मन होता है वह मेरे अन्दर पूरी तरह से समा जाए। इस तकिए का रंग कितना अलग होता है। शुभदा उसे बचाकर रखना चाहती है। पापा गंदे हैं। किसके बेटे हो—मम्मा का···पापा का···शुभदा की तरेरी हुई आंखें···मम्मा का···मम्मा का।

रात को, आधी रात को बच्ची उठकर मेरे पलंग पर खिसक आती है, "हम पापा के साथ सोएंगे। पापा का बेटा बनूंगा!"

मैं सारा-सारा दिन घर से गायब रहता हूं। हम इतने बड़े हो गए हैं, फिर भी मां की चिन्ता नहीं छूटती। लौटता हूं, तो मां का चेहरा हरसने लगता है। सुबह से प्रतीक्षा में ठहरी आंखें। बार-बार कमरों में चक्कर काटती मां की बेचैन चहल-कदमी।

"तू बताकर क्यों नहीं जाता रे! मकान बलवंत ने अपने नाम करवा लिया है···तेरे हिस्से की रकम तो तुझे मिल गई है न? बैंक में मत डालना! बैंकों के पैसे को सरकार जब्त करने वाली है! अपने दोस्त को भी मत देना·· लॉकर में रख छोड़! रुपया सैकड़ा ब्याज भी मिल सकता है। तू शादी कब करेगा रे! बहू आ जाए, तो सब संभाल लेगी। मेरी फिकर तो तभी खत्म होगी!"

कौन करेगा तेरी तरह फिकर? उतना कोई मां तो नहीं [illegible] -उठकर कोई भी राह नहीं देखता। वैसा डर, वैसा [illegible] मां की आंखों में भी नहीं उतर पाता, उतने विश्वास-होता है?

. . शुभदा के कूल्हों पर फिर से मांस चढ़ने लगा है। फिर बच्चो होगी। इस दलदल में कंठ तक धसना हमारे भाग्य में बदा है। जितना उबरना चाहते हैं, उतना ही धसना आता है हमारे हिस्से !

"तुम तो बेकार ही डरते हो। मैं इतनी कच्ची नहीं हूं। आदमी एक बार गलती करता है। हद दो बार। मुझे इतनी मूर्ख न जानो। तुम होते कौन हो ? मैं तुम्हारे हाथ की कठपुतली नहीं हूं। मेरे भेजे में भी आखिर बुद्धि है। आदमी का बिगड़ता भी क्या है ? और तुम··· तुम्हारा भरोसा तो किसी पागल को भी नहीं करना चाहिए। है हिम्मत सारी जिम्मेदारी उठाने की ? आधे-आधे बांटकर रखने होंगे। आया रख लेगी ! तुम्हारी बुद्धि मलिन पड़ गई है। महत्त्वाकांक्षाएं दब गई हैं। मेरी जिन्दगी तबाह करने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं।"

"बम्बई जा रहे हो, किस खुशी में ? रेफ्रेशर कोर्स में··· कोई नया ब्राफर मिल गया है ? एक भी बात नहीं···पीछे से पैसे भेजती रहूं···मेरे पैसों को छुएंगे भी नहीं···पहले से ही बैंक से निकाल लिए हैं। एक दिन···रास्ते में रुकेंगे···जब बलवंत दूर पर हो। भाई के बच्चों से इतनी मुहब्बत···मिले बिना नहीं चलेगा···तने को काट फेंकना चाहते हो और टहनियों को सींचना चाहते हो···तुम्हारे जैसे आदमी के साथ कोई एक दिन नहीं चल सकता···मैं ही नहीं··· कोई भी नहीं।"

बिभू और मेरा लड़का थी। अपने को लेकर उसके पास हमेशा ढ़ो बातों का ढेर रहता। नये लोगों के मध्य अक्सर वह मकुचा उठती और लगता, जैसे किसी बात में उसकी रुचि ही नहीं। उसकी रुचि केवल हम लोगों के भविष्य के विषय में थी। मुझे और कुछ अच्छा ही नहीं लगता। हम बोलते ही चले जाते हैं। अपनी अनसुलझी गुत्थियों को सुलझाते, सफलताओं-असफलताओं और आकांक्षाओं में वर्णन करते हुए। इच्छाएं,

जिन्हें मैंने सुषुप्त बना रखा था। योजनाएं, जिन पर फिर से सोचने की क्षमता चुक-सी गई थी, फिर से उभर पड़ी थीं। अधिकांश योजनाएं तो मात्र इसलिए जीवित रहती हैं कि हम उनकी चर्चा तो कर लेते हैं। सही चर्चा के लिए सही लोगों की जरूरत होती है।

इस घाटी के पहाड़ दूर होने पर भी जैसे पास-पास दिखाई देते हैं। छूने के इरादे से कभी बढ़ना शुरू कर दो तो दूरी समाप्त ही नहीं होती। कुछ ऐसी भी महत्त्वाकांक्षाएं होती हैं, जो हमें संजीवनी प्रदान करती हैं। ऐसी कई बातें थीं, जिनका शुभदा के सामने नाम भी नहीं लिया जा सकता था। कितनी ही ऐसी बातें थीं जो अन्दर-ही-अन्दर घुटकर भुरभुरा गई थीं।

एक और बात भी है। विभू के पास ऐसी ऊष्मा है, जिसे बार-बार महसूस किया जा सकता है। अपनी तमाम चालाकियों और ढोंगों के बावजूद शुभदा का व्यवहार भोंडेपन का था। मोहपाश के तन्तु, जिनसे स्त्री बांधती है, उनसे वह अनभिज्ञ ही थी। उसकी आवश्यकताएं एकदम सीमित थीं। कमजोरियों को स्वाभिमान का नाटक कर छिपाना कितने दिन चलता है। विभू का आचरण एकदम भिन्न और उन्मुक्त रहता है। कुछ जगाने के बाद अचानक ठंडेपन का नाटक उसकी आदत है।

दुविधा का जीवन भी कभी-कभी बड़ा रोचक बन पड़ता है। अपने बारे में सोचते रहने की आदत भी खूब होती है। अतीत की परतें छीलते हुए हम भूल जाते हैं कि उन दिनों वे उस समय हम कितने असन्तुष्ट थे। ऐसा भी तो होता है कि एक साथ ही अनेक प्रश्न हमारे सामने उठ खड़े होते हैं और फिर किसी एक का भी उत्तर न खोज पाने के कारण नये सिरे से सोचना शुरू कर देते हैं।

५

बहुत देर हो चुकी थी। परिस्थितियों की अटूट जकड़न में फड़फड़ाने के सिवाय रह ही क्या गया था? सीमित आकाश, दीवारों की मानिंद ऊंची-ऊंची मलाग चोटियां और उनसे पिघलने वाली बर्फ।

कुचले हुए सांप की तरह महसूस करते हुए, झटके से फन उठाने की इच्छा और फिर दूसरे ही क्षण स्वयं को फिसलन पर छोड़ देने की विवशता। कहीं दूर मैदानों में चले जाने की इच्छा का एक बार फिर जोर मारना। बार-बार जोर मारना। यह चोटियां कितनी निर्मम हैं? जाने लोग यहां किस सुख की खोज में आते हैं? पहाड़ों से फिसलते छोटे-छोटे पत्थर और ढलानों में गड्ढे देखकर लगता, पहाड़ को चोटें आ गई हैं। लैंडस्लाइड देखकर लगता, बहुत बड़ी मानव देह के साथ दुर्घटना हो गई है।

हम ऊंचाइयों की ओर भागते हैं और ऊंचाइयां पीड़ा को और भी उभार देती हैं। जिन्दगी से भागकर हम यहां आए थे और यहां भी अन्त नहीं हुआ। लगता अभी एक बार और भागना होगा। आयु बढ़ने के कारण भी आदमी का मनोबल क्षीण हो जाता है, वरना सम्भावनाएं तो हर जगह हमारी बाट

बाहर के लोग भी कितने बेकार होते हैं ! सब-के-सब उ-न्माद के साथी, जिसमें स्वयं को भूठना हम बहलने और बहकने का स्वांग करते हैं।

इसरानी छुट्टी पर आया है, "मंत साबित यहीं वेज। दस दिन का ज्वाइनिंग टाइम ...लोनीवाला बड़ा खूबसूरत प्लेस है। बम्बई पहुंच जाने दो...बस। यू विल बी सरप्राइज्ड, ब्लैक माइट फार फिस्टीन रुपीज ओनली ...दिल्ली में कैंटन मार्टिन से मिलने तक की बात है। पांच वर्ष का डेपुटेशन...पब्लिक रिलेशन्ज में। कैमरा लटकाए घूमा करेंगे...टी० वी० पर बड़ी-बड़ी डाक्यूमेंट्रीज। बस अब के मार्च में तुम भी बम्बई का प्रोग्राम बना लो...रशमेन रियन न्यूज वीकली...तुम जरूर पढ़ा करो...रशा रियल सोशलिस्ट कन्ट्री...पीयो न...तुम तो गिलास सामने रखकर बस बैठ ही गए हो...लो सिगरेट सुल-गाओ। स्टेट एक्सप्रेस पांच पैसे...सिर्फ पांच पैसे...समझ सेवा पनामा पी रहे हो...यू मस्ट सबस्क्राइब रशमेन वीकली...रूस में बहुत-सी बुराइयां...पर रूस ने ही सबसे पहले उपग्रह छोड़ा ...स्टालिन ने बहुत सख्ती की; पर रूस में अब कोई प्रतिबन्ध नहीं। गिलोरिया और मिफनिश का एकदम विपक्षण...इस्पात का भारी उत्पादन...मैत्री...शान्ति...सहयोग। देखा कम्नि का कमाल ? एक डाक्यूमेंट्री बनाने रूस जाऊंगा। पांच साल से कह रहे हो; पर साथ ले चलते क्यों नहीं मेरे साथ ?"

"तुम पहुंचे जाओ तो मैं आऊंगा।...पर तुम तो मैंप में रहोगे न ?"

"नहीं-नहीं, घबराने की बात नहीं। विजिटर्स के लिए एनेक्सी होती है !"

"तो मैं तुम्हारे पास एक महीना रहूंगा !"

"ओ,...माट परमिसीबल...माट मोर देन ए वीक...!

नीचे मैदान में सब कुछ अपनी जगह होगा। अपनी-अपनी जगह सब ठीक चल रहा है। बलवंत पार्टी-सेक्रेटरी से एम० एल० ए० हो गया होगा। बच्ची काफी बड़ी हो गई होगी। बात में ... कभी नाम आ जाता होगा। कुछ याद करते होंगे, कुछ याद कर घृणा करते होंगे। सबके अपने-अपने कारण, अपने-अपने तर्क और यहां घाटी में नये सिरे का भाईचारा, जीवन का नया क्रम और विभू का मूक समर्थन। क्रम-रहितता का महत्त्व तो होता ही है आखिर।

वर्षों पहले जब बच्ची केवल दो वर्ष की थी क्रम-रहितता तब भी थी। हर स्थिति का अपना सुख और अपने दुःख होते हैं। सोते-सोते आधी रात बच्ची मेरे बिस्तर में खिसक आती। अकारण कांपकर उसका जाग जाना और बड़बड़ाना···मैं सुई नहीं लगवाऊंगी···आंखें खोल नींद में ही घबराई आंखों से देख, फिर सो जाना। कभी सोये-सोये और कभी थोड़ा होश में मुस्कराना। कभी उठकर बैठ जाना या फिर पापा, मम्मी ने आज फिर मारा और साथ ही गहरी स्तब्धता। मेरी प्रतिक्रिया की अनावश्यकता। जैसे शिकायत कर देने मात्र से उसका बदला पूरा हो गया हो। चिपककर साथ लग जाना और कभी टांग मेरे ऊपर लाद सोना···कभी नींद में पूरे वेग से दो-तीन थप्पड़ जड़ स्थिर पड़ जाना···

क्या हुआ बेटे—क्या हुआ—और नींद के दरवाजे पर दस्तक कर मेरी आवाज का लौटकर निरर्थक हो जाना। बच्चे पैदा करने का मुझे कोई हक नहीं। शुरू से ही एक अशान्त, असामान्य, पीड़ित भविष्य की शिला पर खड़े होने वाले बच्चों का कोई पाप नहीं।

... अनगाथ। जितना उसको इच्छा होगी उतना ज्ञान ... के लिए महज एक अनुमान। अपने में सिमट

जाना भी एक गुण होता है। अपने लिए हम नयी मान्यताएं कायम कर सकते हैं। अवज्ञा का रुख भी अपना सकते हैं; पर समूचे ढांचे में कोई-न-कोई ऐसी बात निकल ही आती है, जहां पर एक ओर होकर निकल जाने के अलावा कोई चारा नहीं होता। टकराकर लेना कितना बेमानी होता है। सम्भवतः हितकर भी नहीं होता। छोटा-सा हमारा जीवन। दो व्यक्तियों की दुनिया, उसके बाहर के झमलों में पड़ने का औचित्य भी तो नहीं होता।

गहन अन्धकार के बीच थोड़ी-थोड़ी देर बाद आंख खोल शेष रात का आभास लेने का व्यर्थ प्रयत्न। नीचे सड़क पर कोई निकलता है, तो जान पड़ता है, जैसे बाहर बरामदे में कोई चल रहा है। सड़क पर आने वाली आवाजें अकसर स्वयं को पुकारे जाने का भ्रम उत्पन्न कर देती हैं। उठकर बैठ जाता हूं।

कदमों की चाप दूर तक सुनाई देती खो जाती है। पीछे की दीवार पर जोर से चोटें पड़ती सुनाई देती हैं। शायद कोई अन्दर घुसने का रास्ता बना रहा है। स्थिर पड़ा आने वाले की प्रतीक्षा करता रहता हूं। कोई नहीं आता। ध्वनियां निरन्तर सुनाई पड़ती रहती हैं। लिहाफ को सिर तक खींच सोने का प्रयत्न। सांस घुटने लगती है। छत पर छप्प-छप्प की आवाज सुन चौंक जाता हूं, फिर से बारिश होने लगी है। शायद बर्फ भी गिरे। अबकी झड़ी कई दिन तक लगी रहेगी। मोजे सीलन से भरे-भरे रहते हैं।

खिड़की से छनकर रोशनी चली आ रही है। शीघ्र ही दिन चढ़ने वाला जान पड़ता है। आसमान हलका नीला और कहीं-कहीं चमकीला सफेद है। इतना साफ आसमान बहुत दिनों बाद दिखाई दिया था। सफेद चमकीले टुकड़े एक ओर को बढ़े चले जा रहे हैं। चौंध बर्दाश्त नहीं हो पाती। सब कुछ नया-नया जान पड़ता है। सुनसान, सपाट, लम्बे-लम्बे, दूर-दूर तक फैले

...... के छोटे-छोटे कूप। एक क्षीण-सी मुसकराहट भर लौट आती है। सब कुछ पहले भी कई बार घटित हो चुका है। हार मान लेना भी अच्छा होता है। घुटने टेक समर्पण के बाद दुविधा की अनिश्चयात्मक स्थिति समाप्त भी तो हो जाती है। रास्ते पर चलते चलना ही सबसे कठिन स्थिति होती है।

धीरे-धीरे व्यतीत होता समय...शुरू होने के बाद समाप्त होने वाला दिन...बिन्दुओं का शब्दों में परिवर्तित होता ग्राफ। निश्चित समय में निश्चित दूरी तय करने की मजबूरी। शेष जीवन कितना कम रह जाता है। शेष को लेकर हम अक्सर परेशान हो उठते हैं और पीछा अनायास सरकता चला जाता है।

कभी-कभी तो विभू भी अजीब-सी सुरसुराहट पैदा कर देती है, जैसे कोई छाती पर आ सवार हुआ हो। बत्ती जलती ही छोड़कर सोने लगी है। कभी जब वह चौंककर उठती है, स्पंदन की ध्वनि निकटता से सुनाई पड़ने लगती है। अपनी यातना और अपने सुखों के हम नितान्त अकेले भागीदार होते हैं। कभी-कभी किसी के साथ सब बांट भोगने की इच्छा होती है। कितनी बेकार की इच्छा होती है यह!

धूप निकलने को होती कि धीरे-धीरे खिसकते बादल सूर्य को ढांप लेते और आकाश खिन्न-सा हो उठता। दूर-दूर तक धूमिल धूप के कारण आकाश चांदी के रंग का दिखाई पड़ने लगता। सहसा मन आशंकित हो उठता और अव्यक्त अनर्थ के घेरे फैलने लगते। अच्छे-भले वर्तमान को हम जी नहीं पाते और कैसी-कैसी शंकाएं सताती रहती हैं। दुश्चिंताओं का कोई एक

कारण समझ में न आता। हर बात में से अनिष्ट की सम्भावना उभरकर उठने को होती है।

नीचे इस घाटी से बाहर का अपना इलाका भी कितना विचित्र था! दूर-दूर तक रेतीला मैदान और ऊंची-नीची बंजर चट्टानें। चारों ओर दरिद्रता और सूखे-मरे चेहरे। सुनसान मैदान और लम्बी सड़कों पर व्याप्त गहरी स्तब्धता। टूटे-फूटे, छोटे-छोटे गांव की आबादी। नीचे की, और यहां पहाड़ों की; रात में कितनी समानता है! बेजान, ठंडी और हड्डियों में धंस जाने को मुंह खोले खड़ी-खड़ी एक-सी।

उस सुबह जब मैं सोकर उठा, तो सिर में हलका-हलका भारीपन था। रात की बातों की धुंधली-सी पहचान के कारण उठते ही बेचैन हो उठा था।

कालेज के दिनों में कभी जब देर रात सोने के कारण सुबह पड़ा रहता, तो मां सिर में हाथ फिराते हुए कहती, "देख, तो सूरज कहां पहुंच गया है।"

सूरज की सवारी आज भी अपनी उसी परिधि में चक्कर काटती हुई ऊबती नहीं। आदमी कितना अस्थिर है! जरा-सा क्रम भी सम्भवतः उसे गवारा नहीं। उठने के साथ ही अकर्मण्यता की भावना हावी हो उठी थी और सोच में पड़ गया था—कहीं चले जाना चाहिए…कुछ और करना चाहिए।

मैं उठ गया था। शेष सब सो रहे थे…शुभदा…बच्ची…टिंकू…शुभदा के डैडी…सब कुछ अजनबी हो उठा था। कितना बेकार था उस सुबह का उठना। कोई-कोई दिन अपनी यातनाओं और ऊब के कारण कितना लम्बा हो जाता है, फिर भी बीत तो जाता ही है। काले भयावह धब्बे और सरसराहट छोड़ जाने वाला दिन।

नौकर को काफी लाने का आदेश दे बरामदे में चक्कर

एक दो··· एक···मुड़ो···एक-दो-एक···एक···दो···एक···। उस घर में वह मेरा अन्तिम आदेश था। नौकर पर मेरी आवाज़ का असर भी पुराना ही असर था, हालांकि मेरा सब समाप्त हो गया था। यूं तो एक गुज़ार आदमी के नाते मुझे रात को ही वाक-आउट कर जाना चाहिए था, पर आधी रात के उस समय कहां जा सकता था, इस पर पहले कभी मैंने विचार ही नहीं किया था।

कई बार ऐसे मौके आते हैं, जब हम वह नहीं करना चाहते, जो करना पड़ता है और अपमान के लम्बे घूंट पी कुछ समय आहत रह, फिर पूर्वस्थिति में लौट पड़ते हैं। आखिर किया भी क्या जा सकता है ?

उस सुबह काफी का स्वाद कड़वा हो उठा था। अभ्यासवश की तरह नौकर समाचारपत्र भी मेज पर डाल गया था। वैसे समाचारपत्र देखने का सबसे पहला अधिकार शुभदा के डैडी का था। भूलवश कभी कोई पहले उठा लेता, तो नौकर की आफ़त हो जाती। शायद अभी उनके जागने का समय नहीं हुआ था या फिर वह रात घर लौटे ही नहीं होंगे। समाचारपत्र पलटा था ···अरुचि से बन्द किया और एक ओर डाल दिया था।

रात शुभदा ने अपना अंतिम फैसला सुना दिया था। मैंने भी बिना किसी दुविधा के कह दिया था, "तुम चाहे जब···चाहे जहां जा सकती हो !"

सहसा अपनी ज़बान मुझे खटकती लगी थी और पाया था कि यह बात मुझे स्वयं से कहनी चाहिए थी कि अब मुझे यहां से चाहे जहां चल देना चाहिए। सब कुछ बड़े ही सम्मानजनक ढंग से हुआ था।

"मैंने तुम्हें बहुत दुःख दिया है···अपमान दिया है···अच्छी पत्नी भी साबित नहीं हुई···मेरे छोटे भाई और डैडी ने भी

शिकायत रही है···और कई बार तुमने महसूस किया है कि ह
एक-दूसरे के लिए नहीं बने, जल्दबाजी में फंस गए हैं, आगे न
चल सकते। ठीक है! निर्णय तो लेना ही था। पमला तो अ
हो गया। चाहो तो बच्ची को भी तुम ले सकते हो! सम्भवत
अलग हो जाएं···तुमसे ज्यादा मुझे तकलीफ होगी। यह स
कहने के बावजूद लग रहा है, अपने हाथों में अपनी जिन्द
तबाह कर रही हूं; पर प्रश्न केवल मेरी जिन्दगी का ही नहीं
डैडी की भी यही राय है। जो करना है, दृढ़ता से कर डाल
चाहिए। डैडी का ख्याल है, अलग ही होना है, तो अपना नि
सुनाने के बाद आज रात मुझे इस कमरे में नहीं सोना चाहि
पर अभी हम पूरी तरह से अलग तो नहीं हुए··· मैं यहां सं
पर सो लूंगी।" वह अपने लिए लगाए हुए बिस्तर में घुस ग
थी और मैं बिना कुछ कहे पलंग पर जा लेटा।।

मुझे चुप पा उसने पुरने भद्दे ढंग से रोना शुरू कर दि
या। उसके रोने के साथ मेरी क्या सहानुभूति हो सकती थी
एक आदमी स्वयं ही कोई निर्णय लेता है और फिर उस नि
पर रोना शुरू कर देता है।

ज्यादा-से-ज्यादा मैं पूछ सकता था···उसे मुझसे
अपेक्षा थी? यही न कि मैं डैडी द्वारा किए जाने वाले अप
को पी जाया करूं या फिर यह कि अलग अपना मकान ले
रहने की बात न उठाया करूं और यह भी कि उसके डैडी
सामने हाजिर हो कम-से-कम दिन में एक बार देश-विदेश
राजनीति पर चर्चा किया करूं। सम्भवत: यह भी कि जब
आग उगलती है, तुम दबा एक आर दुबक जाया करूं
कम्पनी की नौकरी को अपनी अन्तिम नियति स्वीकार
लूं।

कुछ भी न कर पाने की असमर्थता के बावजूद दिन गुज
जा रहे थे और मैं फ़ासेर नहीं कर पा रहा था। सम्भवत:

मुझसे कई गुना अधिक शिकायतें थीं और वह मेरी तरह बुदिल नहीं थी। दब नहीं सकती, लड़ सकती है, रो सकती है।

पर उसे रोते या तटस्थ पड़े रहना ठीक नहीं जान पड़ा था और मैंने उठकर उसके कन्धे पर हाथ रख दिया था। थोड़ी देर के लिए हमारा वैमनस्य धुंधला गया था। भय हुआ था कहीं वह भड़क न उठे। हम उस समय वहां वर्षों से की स्थिति भाप-सी बन उड़ गई थी। एक नई स्थिति हम दोनों के सामने थी। मैं और वह सभी पूर्वाग्रहों से रहित वहां उस कमरे में साथ-साथ थे। उन पांच वर्षों में वैसा आदान-प्रदान हम लोगों में पहले कभी नहीं हुआ था। तुरन्त बाद में लिजलिजाहट उभर पड़ी थी और लगा था, किस दलदल में फंसकर रह गया हूं।

उस शाम की परिस्थिति पर नये सिरे से उलझ गया था। शुभदा शान्त सो गई थी। उस शाम को घोषित उसके निर्णय की अगले दिन होने वाली प्रतिक्रिया पर विचार करता मैं जाग रहा था। शुभदा निश्चिंत सो रही थी और मैं इस तरह पड़ा था, जैसे सिर के बल गिरा होऊं। भारी-भारी आंखों के पीछे मैंने स्वयं को एक ऊंची चट्टान से लुढ़कते पाया था, जिसकी ढलान की सतह बहुत नीचे गहरे समुद्र में जाकर समाप्त होती हो।

मौसम अच्छा न होने के कारण भी आदमी बेज़ार हो उठता है। हर समय प्रफुल्लित ही महसूस किया जाए यह भी सम्भव नहीं होता। मन न होने पर स्वाभाविक दिखने का नाटक भी कहां तक किया जा सकता है! जो हमें अच्छे लगते हैं कभी-कभी बुरे भी जान पड़ते हैं। केवल अपनी समस्याओं को सुल-झाने में लगे रहना या मग्न हो उठना भी मनुष्य की आचार-

मूल प्रवृत्तियों का अंग है और स्वार्थी हो उठना भी किसी सीमा तक बंध ही होता है।

कभी-कभी इस घाटी में मैदानों जैसी कड़क धूप निकल आती है और दिन नीचे लौट जाता है। तब एक अजीब खिन्न-सी अनुभूति हो आती है। पीछे की यादें, ऊब, यहां आने की निरर्थकता और लौटने की अर्थहीनता। इतनी भारी धूप के कारण दिन जब लम्बा हो जाता तो अवसाद घटने के बजाय और भी गहराने लगता।

वैसा ही एक लम्बा दिन। कड़क धूप, चमकीला साफ आसमान और मन्द-सी हवा। विभू वहीं चलने के लिए कहती रही और मैं खिन्न-सा बरामदे में बैठा रह गया था। हवा तेज हो गई और पेड़ों से गिरकर पत्तियां बरामदे में फैलती रही थीं। कभी जब मैं विभू का मन नहीं रख पाता तब भी वह उत्तेजित नहीं होती है। चुपचाप अपने कमरे में चली जाएगी या फिर मेरे आसपास मंडरा मुझे टटोलने का प्रयत्न करती रहेगी।

"कभी-कभी बहुत सूना लगता है यहां। इसलिए भी कि तुम हमेशा स्वयं से लड़ते हो। शायद स्वयं को तुम पश्चात्ताप से मुक्त नहीं कर पाते।"

"क्या कहती हो? भला पश्चात्ताप किस बात का? बात केवल कुछ बिगड़ी हुई आदतों की है, जिनमें तुम्हारा उत्तरदायित्व कहीं भी नहीं है।"

"मुझे तो निरन्तर यही जान पड़ता है कि मेरी वजह से तुम स्वयं का जकड़ा हुआ पाते हो। नहीं तो तुम बम्बई नहीं चले जाते क्या?"

"हर काम का एक समय होता है। गुजर जाने पर आदमी केवल कभी-कभी बात कर सकता है, स्वयं को झुठलाने के लिए, धोखा देने के लिए।"

"पर यह निष्क्रियता तो टूटनी ही चाहिए। परिणाम कुछ

भी क्यों न हो, मेरे लिए अब कोई विशेष अन्तर नहीं है। जैसा चल रहा है, वह भी ठीक ही है।"

"क्यों न हम किसी बच्चे को गोद लें।"

"हम केवल अपनी जिन्दगियों के मालिक हैं औरों के लिए कठिनाइयां उत्पन्न कर जाना हम लोगों के लिए कैसे उचित होगा ?"

"मैं अपने बच्चों की बात तो नहीं कर रही थी।"

"कानून क्या है, मैं नहीं जानता, पर गोद लिए जाने वाले बच्चे का भी विधिवत् मां-बाप की आवश्यकता होती होगी !"

"असल में तुम किसी भी तरह की जिम्मेदारी से बचना चाहते हो। बचाव की तुम्हारी आदत से कभी-कभी तो मुझे सख्त विरोध होता है। हर बार तुम आज ही सोचने लगते हो। ऐसा कोई बच्चा भी तो हो सकता है, जिसे जानकारी मां-बाप की आवश्यकता न हो। सब ट्रेनिंग पर निर्भर करता है।"

"गम्भीरता से यदि तुम कोई बात चाहती हो, तो जैसा ठीक समझो।"

विभू ठहाका लगाकर हंस दी थी, "मैं जैसा ठीक समझूं··· तुम्हें भी तो किसी तरह से भागीदार बनना चाहिए···निर्णय से बचने की तुम्हारी आदत भी अजीब है !"

विभू मेरा मजाक-सा उड़ाती जान पड़ी थी। वह समझती है, कहीं-न-कहीं मैं पुरानेपन से जुड़ा हुआ हूं सुरक्षा-पसन्द हूं। उसके लिए इस बात का कोई महत्त्व नहीं कि किसी बच्चे के पास खानदानी नाम नहीं है। जब तक वह समय आएगा, बच्चे यूं भी मां-बापों पर उतना निर्भर नहीं करेंगे। कानून का क्या है ? उसे भी आवश्यकतानुसार बदला जा सकता है। आर्थिक आधार दृढ़ होने पर कोई कठिनाई नहीं रह जाती।

मैंने कहा था, "[illegible] की कामना···बच्चों की

ललक ही एक तरह से संस्कारों की जकड़न के कारण है। हम मुक्त होना चाहते हैं, न कि फिर उन्हीं झंझटों में फंसना है।"

माता अपने बल से बच्चे स्वयं निपट लेंगे। पर इस स्थिति को पहुंचकर, जब आयु ढलान की ओर झुकने लग गई थी, वही करना जो वर्षों पहले होना चाहिए था, अजीब-सी बात थी, फिर एक बच्ची के साथ ही जब न्याय नहीं हो पाया, तो अब नये सिरे से उसी रास्ते चलना डराता भी तो है। बच्चों की बात चलते ही दोष की भावना हावी होने लगती है, कायरता की भावना। बच्ची का उत्तरदायित्व लेने से इनकार करने का अनौचित्य। उस समय परिस्थिति ही वैसी थी। परिस्थिति अब भी वैसी ही है। एक बार फिर से अन्याय किसी मांगे हुए बच्चे के साथ भी क्यों?

मैं अनुमान नहीं लगा पा रहा था कि बच्चे के लिए विभू की उत्सुकता कितनी है। संभवतः घाटी के एकरस जीवन से ऊब उठने के कारण कमजोर महसूस करते हुए वह ऐसी संभावनाओं पर विचार कर रही थी। शुरू में जिन बातों को वह स्वयं ठीक नहीं समझती थी, अब उन्हीं के पक्ष में होने के पीछे अवश्य ही कोई कारण था। शायद वह जीवन की धारा ही बदल डालने पर और कर रही थी।

शायद मैं असफल रहा था। घाटी के जीवन में वैसा कुछ प्रस्तुटित करने में जो हमेशा के लिए हमें स्वयं के प्रति आस्थावान बना डालता। प्रयास करने से भी क्या होता है? होता तो वही है जो पहले से तय होता है। हम व्यर्थ ही ऊहापोह में पड़े रहते हैं और मंसूबे बांधते रहते हैं।

बीच वाले कमरे से छनकर रोशनी मेरे कमरे के फर्श पर फैल रही थी। विभू को मेरी योग्यता पर शक होने लगा था। वह सतर्क भाव से देखती हुई मुसकराती रहती और मैं और भी अनिश्चित मन हो उठता। इन बारह वर्षों में कई बार संशय

की सरसराहट अन्दर-ही-अन्दर उमड़-घुमड़ ऊपर को आने को होती रही है।

वैमनस्य वाली बात को बढ़ावा देना अनावश्यक विस्तार को निमन्त्रण देने-सा जान पड़ता और बचते रहने के प्रयत्न में ही बात समाप्त हो जाती। कभी-कभी आने वाले कटु प्रसंगों की छाया पहले से ही उभरकर फैलती जान पड़ती और हम संभल जाते। ऐसी स्थिति भी आती, जब इच्छा होती, जो होना है अभी हो जाना चाहिए।

सारी आकांक्षाएं तो किसी की भी पूरी नहीं होतीं। हम बढ़ा-चढ़ाकर रुचि-अभिरुचि की बात करते हैं। वास्तव में हमें हर तरह के आदमी को बर्दाश्त करने की आदत डालनी पड़ती है। जीवन में किसी भी वांछित को पहुंच पाने का कोई महत्त्व नहीं होता। सुमदा के साथ बीते वर्ष, बीच के तीन वर्ष और फिर विभू के साथ बाटी का यह जीवन…हम सबके अलावा भी संभवतः कुछ हो सकता था। शायद हमने गंभीरता से चाहा ही नहीं। हर कोर का ऐण्टी कोर होता है। गंभीरता से चाहने पर बिना भिन्न ही जाती हो इसका भी क्या भरोसा?

६

अतीत के हवाले हो जाना कितना आसान होता है ! कुछ ाल्पनिक और कुछ वास्तविक के बीच वर्तमान को धोखा देने ः लिए और चाहिए भी क्या ? शुभदा के अलग होने के बाद ो वर्ष भरसक खालीपन और फिर उसे भरने के लिए सुदूर पूर्व ी यात्राएं। नये परिवेश में आदमी कितना स्वच्छंद और बेपर-वाह हो जाता है ! स्वयं को भूल नयी गलियों, पुरानी इमारतों और ऊंची-ऊंची दीवारों के मध्य सुरक्षा और सुख की अनुभूति होती है।

सृष्टि की विराटता के सामने आदमी की अपनी महत्वा-कांक्षाएं कितनी क्षुद्र जान पड़ने लगती हैं। टूटी-फूटी दीवारें और खंडहर जिन्हों भी बड़ी-बड़ी इमारतों की वास्तविकता के बाव-जूद कितने सजीव और सच्चे होते हैं। इन बड़ी-बड़ी इमारतों के नीचे खड़े होने पर संशय और भय की सिहरन-सी होने लगती है और इन खंडहरों के मध्य जिज्ञासा और गर्व।

उन्हीं यात्राओं के मध्य विभू मिली थी। रात देर तक घूम-फिरकर उस शहर को देखता रहा था। वैसे लम्बे फैले घाट उससे पहले कभी नहीं देखे थे। कभी वे घाट खूबसूरत रहे होंगे। समय की मार सब पर पड़ती है। मटमैली ईंटों को देख निर्माण

साथ अच्छा होने पर समय के खिसकने का पता नहीं चलता। मेरे साथ शुरू से ही अच्छा साथ न होने का दोष रहा था। सौ मील के लम्बे भूभाग में कोई भी सुखा स्थल नहीं पड़ा था। यात्रा के प्रारम्भ के समय की तेज बारिश के कारण अन्धकार-सा छा गया था जिसने रास्ते में पड़ने वाले दृश्यों को पूरी तरह से छिपा लिया था।

चलते-चलते ऐसा भी महसूस होता है, जैसे बात करने को भी शेष कुछ न रहा हो। अपनी जगह बैठे हम ऊबने लग गए थे और पिछले कुछ घंटों से हमारी खालीपन और भी गहरा होता जान पड़ा था। शायद बारिश के मौसम में वैसा महसूस होना अपरिहार्य ही होता है।

गर्मी के मौसम में बाहर के लोग आ जाते। विभू बरामदे में कुर्सी डाल आना-जाना देखती रहती। यह दो महीने बीतते पता ही नहीं चलता। दौड़ती हुई रंग-बिरंगी कारें, लाल-पीले पुल-ओवर डाले बच्चे और जीन्स में खूबसूरत लड़कियां। पहाड़ी पगडंडियों पर एक के बाद एक कतारें और टोलियां। उत्सव, फैशनशो, ब्यूटी कंटेस्ट और रिंक। विभू के कहकहे उसे लौट पड़ते। उसके चेहरे की गहरी पंक्तियां कुछ दिनों के लिए घुल-सी जातीं। उन दिनों एक बदली हुई विभू बात करती और लगता शेष समय वह स्वयं को सायास अनुशासन में बांधे रखती है।

ऊंचे-नीचे रास्तों पर घोड़े की पीठ पर सवार वह आगे निकल जाती। घाटी के लोगों में रुचि लेते हुए बच्चों से हंस-हंसकर बात करना, स्त्रियों के साथ शरारतें और फेरी वालों

को बैठा घंटों सामान उलट-पलट मोल-तोल करने को मैं चुपचाप देखता रह जाता। सहसा एक अहसास कौंध जाता। न केवल यहां इस घाटी में, बल्कि उससे पहले के जीवन में नीचे मैदानों में भी मैंने लोगों को एक निश्चित दूरी मात्र से देखा था और कभी उनमें घुल-मिल नहीं पाया था।

वे दो-तीन महीने नित नये-नये बहाने। घाटी में बाजार लगने और ताज्जुब होता इतनी भीड़, इतने लोग कहां से अचानक आ धमकते हैं। गिरजे के बड़े मैदान में जमीन पर दुकानें सज जातीं और लगता कोई काफिला रास्ता चलते थककर पड़ाव डाले रुक गया है। एक के बाद एक सटी हुई दुकानें और पहाड़ी लोगों के मुंह, दिन छिपने ही न जाने कहां गायब हो जाते। मैदान की हवा में, पहचान में न आने वाली मिश्रित गंध फैल जाती जिसमें सड़ी हुई तरकारियों और भेड़ों के ऊन से उड़ती भाप का आभास होता। पहाड़ी औरतें नंगे सिर घूमती हुई अपने मतलब के सामानों को देखती भाव बढ़ लेतीं।

ऊपर के बाजार के बड़े-बड़े होटल और दुकानें बाहर से आए लोगों से खचाखच भरे रहते और एक ही सड़क पर निरुद्देश्य घूमते हुए चेहरे सहसा जाने-पहचाने जान पड़ने लगते। उन दुकानों, होटलों और मकानों में रहने वाले लोगों के बारे में मेरी जानकारी हमेशा अधूरी रही थी। बारिश में भीगी हुई सड़कों, खिड़कियों के रंग-बिरंगे कांचों, घरों के गहरे रंगों वाले दरवाजों और दुकानों के पीछे मुझे हमेशा एक दूरी का आभास हुआ था।

अन्धकार की उन घाटियों में एक प्रश्न कई बार उभरकर ऊपर आता गया है, सफलता का महत्त्व कितना होता है। शायद अपने छोटे-से दायरे के लोगों से हम ऊपर उठ जाते हैं। एक-आध दिन उत्सव की तरह मना लेते हैं और फिर वही जीवन की सामान्य भाग-दौड़।

बिभू पीछे छूट जाती है···हर बार पीछे छूट जाती है। बिभू

अपने-आप को बहुत जल्दी समझा लेती है···जो नहीं हो सकता उसके लिए सोचना व्यर्थ मान लेती है···जैसा है उसी में से विशिष्टताएं खोज निकालना बहुत बड़ा गुण होता है। मैं भी संभवतः उसी राह चलने लगा हूं। चुपचाप हर स्थिति को, हर बात को स्वीकार करते चले जाना; पर अन्दर कोई और आदमी जाग पड़ता है जिसकी अपनी मांगें हैं, जो मुक्त होना चाहता है। उसे संजोकर रखा जाने वाली यह बाहरी दुनिया कितनी क्षुद्र जान पड़ती है और वह भागने के लिए छटपटाता रहता है।

वह कौन है और क्यों तनकर खड़ा हो जाता है···उसकी क्या मांगें हैं, मेरे लिए बतला पाना कितना कठिन है। मेरे प्रयत्न ···मेरी क्षमता उसकी आकांक्षा के सामने इतनी महत्त्वहीन हो उठती हैं कि मैं उसकी बात अनसुनी करने की आदत डाल लेता हूं। हमारी आदतों का हमारे आसपास के लोगों पर भी असर पड़ता है।

घाटी की हलचल से दूर कभी-कभी पहले न देखे रास्तों पर निकल जाने की इच्छा होती। टेढ़े-मेढ़े, ऊंचे-नीचे रास्ते। एक ओर खाई, दूसरी ओर चोटियां। बहुत दूर निकल पड़ने पर लगता लौटने का रास्ता भूल जाऊंगा। रास्ते में आने वाले मोड़ों, पेड़ों और अलग दिखने वाले पत्थरों को निशानी के लिए मन-ही-मन याद करता चला जाता और लौटती बार सब भूल जाता।

इस ओर जब सूर्य निकलता है और धूप चढ़ती है, घाटी के दूसरे हिस्से की तलहटी में शीत की सरसराहट ही भरी रहती है। उस ओर के लोग सूर्योदय से वंचित ही रह जाते हैं। शाम

सूर्य डूबने समय जब इधर अन्धकार फैलने लगता है, तो उधर फीकी धूप अभी शेष होती है। दोनों ही ओर की उन स्थितियों में थमना रहती है। कभी चलते-चलते जब उस स्थान पर पहुंच जाएं, जहां से ढलान समाप्त होती है, तो विभाजन-रेखा स्पष्ट दिखाई पड़ जाती है। पहाड़ के एक मोड़ पर सूर्य की नम धूप से उद्दीप्त शिखाएं और दूसरी ओर शीत और ढलती हुई परछाइयां।

"अधर तुम बहुत बाहर रहने लगे हो?" बिमू ने कहा था।
"कुछ आवश्यक कार्य रहता है।"

"जब तुम्हारा जी होना है, काम का बहाना कर लेते हो। पीछे का भी कुछ खयाल होना चाहिए। रात-दिन इन कमरों का चक्कर काट जिन्दगी तो नहीं बिताई जा सकती। कभी तुम्हें यह भी खयाल आता है कि मैं भी साथ चल सकती हूं। हमेशा अगली बार कहकर टाल जाते हो।"

"साथ-साथ लगे रहने से कैसे चलेगा? तुम्हें खुद अहसास होना चाहिए।"

"प्रश्न साथ लगे रहने का नहीं है, तुम्हारी नीयत का है। तुम मुझसे बचना चाहते हो। कह दो कि झूठ है। कई-कई दिन गायब रहना। बिन्नी जो हमेशा तुम्हारा पक्ष लेती रही है, वह भी महसूस करती है कि तुम बदल रहे हो।"

सच्ची बात यही है। बिमू में एक अच्छी पत्नी के सारे गुण हैं। मैं ही जान-बूझकर तनाव उत्पन्न करता रहता हूं। पिछली बार मैं तीन दिन के लिए गायब रहा था। शायद और भी दो-तीन दिन निकल जाते। डाक्टर सेठा कार लेकर मुझे ढूंढता रहा था। अनुपस्थिति को इतनी गम्भीरता से लिया गया था, जानकर मैंने बीमारी का बहाना कर लिया था। डाक्टर सेठा के ... लेते हुए जब बीच वाले कमरे में प्रविष्ट हुआ; लोगों को देख मैंने स्वयं को हताश-सा महसूस

किया था। मुझे देखते ही सबकी आंखें उठ गई थीं और बिमू तो झटके से उठकर अपने कमरे की ओर ओझल हो गई थी। बिन्नी ने उतरे हुए चेहरे से मेरी ओर मात्र ताका था। केवल मुनव्वर इनके से मुसकुरा दिया था। डाक्टर डेनियल के चेहरे का भाव तटस्थ था।

बिन्नी के होंठ गुस्से से फड़फड़ाए थे, "तुम्हें पता था, हम लोग आए हैं और तुम घर छोड़कर भाग लिए। तुम क्या समझते हो, हम होटल में नहीं रह सकते ? और फिर बिमू को इस तरह सताने का क्या मतलब है ? तुम्हें शर्म आनी चाहिए।"

मेरे कुछ बोलने से पहले ही मुनव्वर बोल पड़ा था, "मुझे तो डर था, कोई दुर्घटना न हो गई हो। वरना इस तरह मैदान छोड़ने वाले आदमी तो हो नहीं तुम ?"

"तीन दिन क्या करते रहे हैं आप ? कभी खयाल आया कि पीछे लोगों का क्या हाल हुआ होगा ? जान-बूझकर ऐसे नाटक करते हो। बिमू को आतंकित करने में तुम्हें मजा आता है।" बिन्नी का गुस्सा अभी कम नहीं हुआ था।

"क्या हो जाता मुझे ? तुम लोग बेकार ही परेशान होते रहे।" मैं बिना सोचे-समझे बोल पड़ा था।

"तुम्हें इतना तो पता ही था कि हमें चिन्ता हो रही होगी ?"

मुनव्वर ने बीच में ही बात काट दी थी, "जाओ, उधर उससे बात करो।" और बिमू के कमरे की ओर इशारा किया था।

डाक्टर डेनियल चुप बैठी थी। मैं सिर नीचा किए बिमू के कमरे की ओर हो लिया था। ऊंचा बोलते हुए कहा था, "इसमें घबराने की कौन-सी बात थी ?"

"घर से बाहर होते ही तुम पीछे की सोचना भूल जाते हो। अपने सिवाय किसी दूसरे का खयाल रहता है तुम्हें ?..."

हो···होकर हंसता···लगातार पीते चले जाना और यहां से वहां···वहां से यहां···। मेरी हर बात गलत होती है ? मुझे परेशान करने के लिए तुम कुछ भी कर सकते हो ? कम-से-कम यह तो बता ही सकते हो कि तीन दिन तुम क्या करते रहे या गुप्त रखने की कोई बात है ?"

"बताने लायक कुछ भी तो नहीं है।"

"साफ क्यों नहीं कहते हो कि लगातार पीते रहे हो। यहां तक बदबू आ रही है।"

"तुम्हारा ख्याल सही है। मुझे जबरदस्ती वे लोग पिलाते चले गए। शायद कोई नशीली गोली भी डाली गई थी। चलते समय मैं गिर पड़ा था और सिर में चोट भी आई थी। तुम्हारा चिन्ता करना गलत नहीं था। अनर्थ होते-होते बच गया। वरना तुम सोचो, मैं तीन दिन बाहर रहने वाला हूं ? शेष लोगों को समझाना अब तुम्हारा काम है।" मेरी आवाज पूरी तरह से दय-नीय हो उठी थी। मुझे विश्वास हो चला था कि विभू स्वयं को संभाल लेगी और अधिक नाराज नहीं होगी।

उस शाम मुनव्वर ने अकेले में मुझसे पूछा था, आखिर मैं चाहता क्या हूं ? ब्रांडी सिप करते हुए सोचने की मुद्रा में उसने मेरी ओर देखा था। उत्तर से पहले मैं उसके प्रश्न को समझ लेना चाहता था। संभवतः वह मेरी विनाशकारी प्रवृत्ति का मूल कारण जानना चाहता था। सच्ची बात तो यह है कि मैं स्वयं भी नहीं जानता। जो होना चाहिए था वह नहीं हुआ था और शेष सब कुछ होते हुए भी बेस्वाद हो गया था।

मुझे चुप पा मुनव्वर ने अपना प्रश्न दूसरे ढंग से दोहराया था, "कोई और लड़की है ?"

"नहीं।"

"फिर क्या है ?" उसकी आंखों में चमक आ गई थी। यह ···ब भी आता है एक बोतल ब्रांडी मंगवानी पड़ती है। ह्विस्की

के बजाय ब्रांडी बेहतर ड्रिंक है, उसे जाने कैसा भ्रम हो गया था। आगे को झुकते हुए बोला था, "पैसे की कमी तो नहीं पड़ने लगी ?"

"वैसी कोई बात नहीं है।"

"कोई गुप्त रोग तो नहीं लग गया ?"

"मजाक करने लगे ?"

"समझा, ज्यादा पीते रहने के कारण भी आदमी संतुलन खो बैठता है। शायद मुसीबतें खड़ी करने में तुम्हें मजा आता है।"

मुझे लगा था, मेरे अन्दर कोई कमी अवश्य है। जिस हल्केपन से वह ऐसे हिला बातें कर लेता है, मैं कभी नहीं कर पाया था। उसके देखने, बोलने और चलने में, मेरे देखने, बोलने और चलने में कितना अन्तर है।

"मेरी असली परेशानी तो तुम जानते ही हो। मुझे निरंतर अहसास-सा बना रहता है कि मैं जिन्दगी में बुरी तरह से असफल रहा हूं। इसी एक भावना के कारण नीचे-ही-नीचे धसता रहता हूं।"

"मैंने कई बार कहा है, मेरे साथ बम्बई चलो। न तो तुम यहां से निकलना चाहते हो और न ही यहां पूरी तरह टिक पाते हो।" आगे झुकते हुए उसने कहा था, "जहां तक तुम्हारी असफलता की बात है, तुम, मैं इस घाटी और इसके बाहर के लोगों सबकी स्थिति एक-सी है। जितनी जल्दी हम इस बात की सच्चाई को पहचान लेते हैं और स्वयं को स्थिति के अनुसार ढाल लेते हैं उतनी जल्दी ही हम सही जीवन की ओर बढ़ने लगते हैं।"

यह सब कहने की बातें हैं। सुनने में अच्छी भी लगती हैं।

हो···होकर हंसना···लगातार पीते चले जाना और यहां से वहां···वहां से यहां···। मेरी हर बात गलत होती है? मुझे परेशान करने के लिए तुम कुछ भी कर सकते हो? कम-से-कम यह तो बता ही सकते हो कि तीन दिन तुम क्या करते रहे या गुप्त रखने की कोई बात है?"

"बताने लायक कुछ भी तो नहीं है।"

"साफ क्यों नहीं कहते हो कि लगातार पीते रहे हो। यहां तक बदबू आ रही है।"

"तुम्हारा ख्याल सही है। मुझे जबरदस्ती वे लोग पिलाते चले गए। शायद कोई नशीली गोली भी डाली गई थी। चलते समय मैं गिर पड़ा था और सिर में चोट भी आई थी। तुम्हारा चिन्ता करना गलत नहीं था। अनर्थ होते-होते बच गया। वरना तुम सोचो, मैं तीन दिन बाहर रहने वाला हूं? शेष लोगों को समझाना अब तुम्हारा काम है।" मेरी आवाज पूरी तरह से दय-नीय हो उठी थी। मुझे विश्वास हो चला था कि विनू स्वयं को संभाल लेगी और अधिक नाराज नहीं होगी।

उस शाम मुनव्वर ने अकेले में मुझसे पूछा था, आखिर मैं चाहता क्या हूं? ब्रांडी सिप करते हुए सोचने की मुद्रा में उसने मेरी ओर देखा था। उत्तर से पहले मैं उसके प्रश्न को समझ लेना चाहता था। संभवतः वह मेरी विनाशकारी प्रवृत्ति का मूल कारण जानना चाहता था। सच्ची बात तो यह है कि मैं स्वयं भी नहीं जानता। जो होना चाहिए था वह नहीं हुआ था और शेष सब कुछ होते हुए भी बेस्वाद हो गया था।

मुझे चुप पा मुनव्वर ने अपना प्रश्न दूसरे ढंग से दोहराया था, "कोई और लड़की है?"

"नहीं।"

"फिर क्या है?" उसकी आंखों में चमक आ गई थी। वह जब भी आता है एक बोतल ब्रांडी मंगवानी पड़ती है। व्हिस्की

के बजाय ब्रांडी बेहतर ड्रिंक है, उसे जाने कैसा भ्रम हो गया था। आगे को झुकते हुए बोला था, "पैसे की कमी तो नहीं पड़ने लगी ?"

"वैसी कोई बात नहीं है।"

"कोई गुप्त रोग तो नहीं लग गया ?"

"मजाक करने लगे ?"

"समझा, ज्यादा पीते रहने के कारण भी आदमी संतुलन खो बैठता है। शायद मुसीबतें खड़ी करने में तुम्हें मजा आता है।"

मुझे लगा था, मेरे अन्दर कोई कमी अवश्य है। जिस हल्केपन से वह कंधे हिला बातें कर लेता है, मैं कभी नहीं कर पाया था। उसके देखने, बोलने और चलने में, मेरे देखने, बोलने और चलने में कितना अन्तर है!

"मेरी असली परेशानी तो तुम जानते ही हो। मुझे निरंतर अहसास-सा बना रहता है कि मैं जिन्दगी में बुरी तरह से असफल रहा हूं। इसी एक भावना के कारण नीचे-ही-नीचे धसता रहता हूं।"

"मैंने कई बार कहा है, मेरे साथ बम्बई चलो। न तो तुम यहां से निकलना चाहते हो और न हो यहां पूरी तरह टिक पाते हो।" आगे झुकते हुए उसने कहा था, "जहां तक तुम्हारी असफलता की बात है, तुम, मैं हम बाटो और इसके बाहर के लोगों सबकी स्थिति एक-सी है। जितनी जल्दी हम इस बात की सच्चाई को पहचान लेते हैं और स्वयं को स्थिति के अनुसार ढाल लेते हैं उतनी जल्दी ही हम सही जीवन की ओर बढ़ने लगते हैं।"

यह सब कहने की बातें हैं। सुनने में अच्छी भी लगती हैं।

कमरे का पिछला दरवाज़ा लॉन में टेरेस पर आ खुला था। अन्दर की अपेक्षा बाहर अच्छा लग रहा था। दरवाज़े बंद रहने से आवरुद्ध सीलन और कोहरा-सा भर गया था। बाहर की हवा ताज़ी और शानदार जान पड़ी थी। चलने से टेरेस का फर्श ऊपर-नीचे होता लग रहा था—एक-दो-एक—एक-दो-एक। मुझे।

पूरे घर पर उदासी-सी घिर आई थी। अब तक बारह वर्ष जैसे हंसी-खुशी से थे और अब ठहराव आ गया था।

बिन्नी ने शेष दिन मुझसे बात नहीं की थी और बीच के कमरे में बंद हो गई थी। मुनव्वर का बिस्तर मेरे कमरे में लगा पड़ा था और वह अभी तक लौटा नहीं। बाहर गहरी स्तब्धता व्याप्त है। बीच-बीच में ऐसी ध्वनियों के सुनाई पड़ने का भ्रम होता है, जो शायद कभी भी नहीं हो रही थी। सिर में पीछे की ओर गर्दन से ऊपर हलका दर्द। कानों में छप्प-छप्प की आवाज़ें उठ रही थीं।

पीछे के तीन दिन की घटनाओं को क्रमानुसार सोचने का प्रयत्न करता हूं, तो कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता।···छप्प-छप्प ध्वनि बंद ही नहीं हो रही। शायद नल की टोंटी खुला छोड़ बिन्नू भूल गई है और पानी छप्प···छप्प···टर···र···र फर्श पर गिर रहा है।

सोच में पड़ जाता हूं, आखिर मैं चाहता क्या हूं···आखिर यूं कब तक चलेगा···बारह वर्ष बिना सोचे ही निकल गए। थोड़ा-सा मन मारने की बात और फिर कुछ और वर्ष यूं ही घिसटते हुए निकल जाएंगे। बेमानी-सा कुछ समय का ज्वार। फिर वही किनारे से दूर नीचे-ही-नीचे, भीतर-ही-भीतर गहरे में बहते रहना।

कैम्प में संतरी ने ग्यारह के घंटे बजा एक बार फिर मौन तोड़ा था। घंटे के बजने के बाद के शून्य के साथ खलबली-सी

भय उठी थी और अन्दर से कोई तर्क करता जान पड़ा, 'यहां खड़े-खड़े क्या कर रहे हो ? इतने लम्बे समय को बेकार करने वाले तुम नितान्त अकेले व्यक्ति हो। शुभदा से छुटकारा पाने के बाद भी तुम नहीं संभले ? अब भला कोई चमत्कार होगा ? क्यों नहीं घुटने टेक देते ? पूरी ढील देनी होगी। उन बातों का अब कोई महत्त्व नहीं।'

बारह वर्षों में पुल के नीचे से बहुत पानी बह जाता है। बम्बई आकर भी कुछ नहीं होगा···तुमने अपने कार्यक्षेत्र की पहचान ही गलत की थी ! और अब ?···अब बहुत देर हो चुकी है।···एक-दो-एक···एक-दो-एक···मुड़ो···आधे सर का दर्द··· एक ही सारीडान काफी···। शायद विभू के कमरे में रखी हो— एक-दो-एक···आगे बढ़ जाता हूं। दरवाजे पर पहुंच सहसा कदम रुक जाते हैं। खटखटाना चाहता हूं···हाथ बंधा-सा गया जान पड़ता है।···हलका-सा धक्का देता हूं·· सिटकनी चढ़ाई नहीं गई थी। बाहर का दरवाजा विभू खुला नहीं छोड़ती। बढ़ जाओ···बंद होता तो संभवतः मैं अपने कमरे की ओर मुड़ लेता। कमरे में अंधेरा भर आया था।

"सो गईं ?"

पलंग पर हलचल और साथ बेड स्विच के दबने की आवाज। मेरी ओर देखते हुए वह उठकर बैठ गई। मेरी पसन्द का ढीला-ढाला नाइट सूट·· इलास्टिक के लचीले डोरे·· जिन में खुले रहने वाले बाल इस समय पीछे से बंधे हुए। चेहरे पर हलकी-सी नींद का अहसास और कोल्ड क्रीम।

उबासी लेते हुए प्रश्न-भरी आंखों से देखने की मुद्रा, "कुछ भूल गए थे यहां ?"

"इस तरह, अजनबियों की तरह क्या देख रही हो ? मैं कोई नया आदमी हूं ? कुछ दिन बाहर रह आना कोई इतनी बड़ी घटना थी भला ? तुम भी बात का बतंगड़ बनाने लगी

हो।" सहसा लगता है, मेरा तो कोई दोष ही नहीं था। ये कुछ ज्यादा ही भावुक किस्म के हैं।

इस तरह बंधने वाला कौन है यहां? कोई भी तो नहीं। न बिन्नी...न मुनव्वर...न ही डाक्टर डेनियल। बूढ़ी होने आई हैं, फिर भी यंग से यंग डाक्टर को फांसती हैं। शराब पीती हैं...सिगरेट पीती हैं...बन-ठनकर चलती हैं...कभी कोई दुविधा नहीं। लगा था मैं पूरी तरह से अपनी अधिकार सीमा में हूं। चोर-भावना छनकर बह गई थी।

"बहुत गुस्सा हो?" अगले शब्द अटक-से गए थे। पूरी तरह तैयार होने के बावजूद समझौते के शब्द कहने की हिचकिचाहट

"गुस्सा किस बात का? केवल अफसोस होता है। जब हम शुरू-शुरू में यहां आए थे, सब कुछ कितना भिन्न था! हम लोग जवान थे, अभी भी बूढ़े नहीं हुए हैं। महत्त्वाकांक्षाएं थीं। कुछ-न-कुछ करते रहते थे। कुछ नहीं तो ढेरों चिट्ठियां ही लिखा करते थे तुम...फिर उत्तर आने की प्रतीक्षा। सुबह ही डाकखाने चल देते...या फिर कुर्सी डाल उत्तावलेपन से डाकिये की प्रतीक्षा...धीरे-धीरे सब मिटता चला गया। मैं समझ नहीं पाती...कसूर किसका है...तुम्हारा या मेरा?"

"आगे-पीछे सभी के साथ ऐसा ही होता है।" मैंने कहा था।

"कोई जरूरी नहीं। तुम्हारे जैसी पराजयवृत्ति कम लोगों में ही होती है। लोग पचास-साठ तक की आयु में नये सिरे से प्रारम्भ करने की सोचते हैं। तुम कुछ करना ही नहीं चाहते। न सही; पर इस तरह मुझे पीड़ित करने का तुम्हें कोई हक नहीं।"

शब्द कितने निरर्थक होते हैं। मेरे अन्दर कोई उफान नहीं थी। मैं केवल अपने विषय में जानना चाहता हूं। यह सब अजीब सिलसिला है, यहां आने के लिए अपने मां-बाप—किसी की पर-

चाह नहीं की। कभी उसे उनका ध्यान भी नहीं आया था। आया भी था तो उससे उनकी यातना कम होने का तो कोई प्रश्न नहीं था।

उसने दोबारा बोलना शुरू कर दिया था, "मेरे लिए अब कोई चाव नहीं रह गया। यह घर, घाटी के वे स्थान, जहां हम बारह वर्षों से बार-बार गए हैं, सबसे अब मेरा दम घुटता है। यह मकान अब मुझे पराया लगता है। कुछ भी करने का उत्साह ही नहीं बचा। यही सब होना है तो एकदम हो जाना चाहिए। कभी तुमने सोचा है कि यहां दिन कैसे कटता है? कई बार सोचा है कमरों के लिए नये पर्दे बनाऊं; पर तुम्हारी रुचि ही नहीं, तो करने से फायदा! इतना सब तो बर्दाश्त कर सकती हूं। तुम पर तुम्हारी धमकी, चुपचाप चले जाओगे और कभी लौटकर नहीं आओगे। कभी सोचा है, यहां पीछे तुम्हारी प्रतीक्षा करने वाला ही आखिर कौन है? जाने को कभी भी जाया जा सकता है। कोई भी जा सकता है।"

मैंने बढ़कर उसके मुंह पर उंगली रख दी थी। इतनी सारी शिकायतों का उत्तर बोलकर दिया भी कैसे जा सकता है!

--

सोकर उठा, तो खिड़की के कांचों में से छनकर धूप अन्दर प्लावित हो रही थी। विभू शायद हो चुकी थी। स्टोव के जलने और बर्तनों के खटखटाने की आवाज सुनता हुआ सिर के नीचे हाथ दिए मैं पड़ा रहा था। कमरे की दीवारों का रंग फीका पड़ गया था और मैंने महसूस किया कि पूरे मकान की मरम्मत की सख्त ज़रूरत है। सामने की दीवार पर टंगी पेंटिंग पहले मैंने कभी नहीं देखी थी। विभू लाई होगी या बिन्नी ने दी होगी।

मेरे शाम होने तक कोई वर्षा नहीं हुई थी। कुल-मेल में कुछ नये कवर चढ़ गए जान पड़ते थे। इसका मतलब है विभू अपने साथ मंगाने कर रही है। वक्त काटने का दूसरा उपाय जुटा रही है।

स्टोव बंद हो गया था और बरामदे में उसकी सुनाई पड़ी थी। चाय लेकर विभू आती ही होगी। उठकर बैठ जाना [illegible] मोया होने का आभास नहीं देना चाहता। दे उठाए हुए [illegible] आती है, प्याला थामे हुए मगर मुस्कान के साथ आगे [illegible] देती है।

"आज की सुबह पिछली सुबहों से अच्छी लग रही है।" मेरा इशारा बाहर खुल आए मौसम की ओर था।

विभू ने बात को दूसरा अर्थ दे डाला था, "बाहर रहने के बाद घर लौटना हमेशा अच्छा ही लगता है।"

चाय पीते हुए मैं विभू के चेहरे को गौर से देखता रहा था। जब आदमी बुढ़ाने लगता है तो खालीपन और भय की भावना भर जाती है। अन्दर ही कोई बहुत मजबूत विकल्प हो तो बात अलग होती है। दो व्यक्तियों के साथ-साथ बिना दुराव आगे बढ़ने के लिए बहुत सारी समानताओं की जरूरत होती है। एक जैसी आदतें, रुचियाँ और आकांक्षाएं। दूसरों की भावनाओं को चोट पहुंचाने का हमें कोई हक नहीं होता। प्याला खाली करते हुए मैंने मेज पर रख दिया था।

शुरू में हम दोनों की रुचियों और आकांक्षाओं में बहुत समानता थी। बाद में घिर आने वाले तनाव में विभू का व्यक्तिगत रूप से शायद ही कोई दोष रहा हो। अपनी-अपनी आकांक्षाओं को लेकर ही हम लोगों का मतभेद बढ़ा था। विभू ने स्वयं को वर्तमान की आवश्यकताओं के अनुसार ढाल लिया था। मैं अन्त तक स्वप्नजीवी बना रहा था। यहीं से हम लोगों में दरार पैदा होनी शुरू हुई थी।

स्त्रियां संभवत: होती ही कम महत्त्वाकांक्षी हैं। विभू कर ख्याल था समयानुसार बदलते हुए मुझे बहुकना बंद कर देना चाहिए। उसके सुझाव सुन हंसी आने को होती। हम लोगों के सम्बन्ध का आधार ही अनिश्चितता में निहित था। फूंक-फूंक-कर कदम रखना, सुनिश्चित, सुनियोजित जीवन के विपक्ष में खड़े होने के बाद ही निर्णय के विरोध में काम करता उसे देख मुझे आश्चर्य भी होता और अपनी दृढ़ता के प्रति संशय भी।

शुरू के उन दिनों सोचने का मौका भी नहीं मिलता था। तब दिन इतने लम्बे नहीं हुआ करते थे। कुछ करने या न करने के पीछे कारण ढूंढने की जरूरत भी महसूस नहीं हुआ करती थी। करना क्या था इसकी शायद कोई तसवीर भी नहीं थी।

गर्मी के दो महीनों की चहल-पहल। अपरिचित लोगों की भीड़। सुबह से शाम तक के लम्बे प्रोग्राम। ऊपर क्लब में सारी-सारी रात नाचते हुए एक बगल से दूसरी बगल। विभू के अन्दर का सब कुछ बदल गया था। अब कभी ऊपर क्लब में जाते भी हैं, तो एक ओर कुर्सी डाल फ्लोर की ओर देखती रहती है। उसकी आंखों में उतरने वाली धुंध को देख अक्सर लगता है, वह भी मेरी ही तरह की छटपटाहट महसूस करते-करते हार स्वीकार कर चुकी है; पर अपनी भावनाओं पर नियंत्रण रखने की उसमें अपूर्व क्षमता है। बारह वर्ष पूर्व जरा-सी बात पर उसने नाचना छोड़ दिया था। क्षणिक निर्णय को इतनी महत्ता देने के प्रति मैं शुरू से शंकित मन रहा हूं।

भावावेश में घटने वाली बातों का कभी-कभी विस्तृत प्रभाव पड़ जाता है। सफलता में विश्वास रखने वाला भाई बलवंत··· निर्णय को टालते रहने की विभू की आदत और कोई भी दोष न दे पाने वाली मां, इस सबके बावजूद ही कुछ लोग महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं, हमें आगे बढ़ने में मदद कर पाने में या बने-बनाए को गिरा देने में।

यहां इस घाटी में चले आने के पीछे मात्र कारण विभु ही नहीं थी। कुछ और लोग और परिस्थितियां भी थीं, जिनसे पार बगैर गुजर नहीं थी। बार बराबर भाई अनर्थ। मां ने कितना चाहा था दोनों मिलकर रहें। विभु में कुछ बातें हैं जो पूरी तरह मुझसे मेल खाती हैं। निर्मल की जिन्दगी को समेटते चले जाना। विरोध होने पर भी असहाय कुछ न कर पाना। सुधा के साथ निर्वाह करने का मैंने भरसक प्रयत्न किया था और विभु ने मेरे साथ।

७

साथ-साथ हवाओं के बीच पेड़ दोहरे होते रहते। लम्बी उबाऊ दोपहर। सामने की खाली सड़क पर उड़ते हुए पत्ते नीचे खाई की ओर गिरते, बीच में झूलते हुए फिर से ऊपर उठने लगते। पलंग के साथ लड़ते-लड़ते ऊबकर बाहर चला आया था। बिना उद्देश्य विभू के कमरे तक चला गया था। हलका-सा दरवाजे को खोल अन्दर झांका था। विभू गुर्राने की अजीब आवाजें कर रही थी।

कमरे में अन्धकार होने के कारण अन्दर का दृश्य अस्पष्ट-सा जान पड़ा था। नींद में रोकर कुछ बोल रही थी और शब्द पकड़ में न आ रहे थे। आवाजें फटकर कमरे में फैल रही थी जैसे किसी तख्ते को चीरा जा रहा हो। बारह वर्ष के अपने साथ में विभू को इस तरह चीखते मैंने पहले कभी नहीं सुना था। दूसरों के सामने स्वयं को खोलना उसे बिलकुल पसन्द नहीं था। जब कभी भी आपे से बाहर होने की स्थिति उत्पन्न होती हमेशा उसे कमरे की ओर दौड़ते ही मैंने देखा था। दूसरों के सामने रिरियाना उसे कतई अच्छा न लगता। अपनी ही आवाज से उसकी नींद टूटी थी। मुझे पास बैठा पा उसने मुंह मोड़ लिया था।

"तुम यहां क्यों आए ?"

"बिना बात ही नाराज रहने लगी हो तुम।"

"तुम साफ क्यों नहीं कह देते ?"

"यह तुम्हारा भ्रम है !" मुझे लगा था मैं किसी बहस में नहीं पड़ना चाहता और उसके अन्दर का तनाव कम करने के लिए मूल संदर्भ को स्थगित भी कर सकता हूं।

"पहले तुम इस तरह का व्यवहार नहीं करते थे।"

"छोटी-छोटी बातों को लेकर इधर तुम ज्यादा ही सोचने लगी हो।"

"ऐसी ही शंकालु होती तो आज यह नौबत आती ही नहीं और फिर बिगड़ा ही क्या है। बांधकर रखा भी तो नहीं जा सकता।...पर यह मत कहना, पहल मैंने की।" उसका गला रुंध गया था। चेहरे को नीचे करते हुए शान्त-सी पड़ गई थी।

स्वयं को उसने संभाल लिया था। "जानते हो कल पूरी शाम मैंने एक अजनबी के साथ व्यतीत की। हम लोग ऊपर होटल में बैठे रहे थे और देर तक वह पीता रहा और मैं सामने बैठी देखती रही, फिर वह मुझे यहां तक छोड़ने आया। उसने छूना चाहा, तो मेरे अन्दर कुछ भी नहीं हुआ, जब मैंने उसे चले जाने को कहा, तो उसने प्रश्न किया था, मैं "तुम्हारे साथ ही बंधकर क्यों रहना चाहती हूं ?"

आगे सरक मैं उसके साथ सट गया था। दोनों हाथों से पकड़ उसने मुझे नीचे की ओर खींच लिया, "जो भी निर्णय लेना है, ले डालो। दुविधा में नहीं रहना होगा। मैं तुम्हें किसी बात के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराऊंगी।"

अपनी ओर से विभू ने बतला दिया था वह किसी और के साथ नहीं जाएगी, मैं भले ही अलग हो जाऊं। मैं उस आदमी के बारे में सोच रहा था, जिसके साथ उसने पिछली शाम व्यतीत की थी और जो उसे छूना भी चाहता था।

कौन हो सकता था ? मुनव्वर, नहीं ? कैम्प का कोई अफ-सर, नहीं। डाक्टर खेड़ा ? कोई भी रहा हो। नाम का महत्त्व ही क्या होता है ? और फिर यह तो विभू के सोचने की बात है।

इसके बावजूद कि यह विभू के सोचने की बात थी मैं किसी नयी स्थिति के लिए स्वयं को एकदम तैयार न पा रहा था, "व्यर्थ की बातों पर अधिक ध्यान देने लगी हो। कुछ बातें आधारभूत होती हैं, जिनके बारे में मैंने कभी दुबारा सोचने की जरूरत नहीं समझी।"

विभू चुप रही थी। शायद उसे मेरी बात का विश्वास नहीं हुआ था। मकान की इन छतों में सब कुछ समेट लेने की क्षमता है। लौटकर हमेशा सुरक्षा महसूस होती है। वरना चारों ओर की सारी चीजें पूरी तरह से बिखरी हुई थीं। शुरू से ही सबके लिए मैं निराश करने वाला अनुभव साबित हुआ था। अपने से की जाने वाली किसी भी अपेक्षा को मैंने कभी पूरा नहीं किया था। अकसर अन्दर से पूरे विरोध के साथ एक अजनबी उठ खड़ा होता है। मन्द मुसकराता हुआ बार-बार चोट करने वाला। बहुत सारे छिद्र थे और उन्हें पाटने के लिए कुछ भी करने में मैं बुरी तरह से असमर्थ रहा था। कुछ हो ही नहीं सकता। जैसे चल रहा है ठीक है। इसी रूप में लेना होगा। सहसा अजनबी का दबाव कम हो जाता। उसकी मुसकान विलीन हो जाती और नसों का तनाव मिट-सा जाता। जैसे कोई दुःस्वप्न था जो टूट गया है, मैं कमरे में हूं। अपने पलंग पर। चारों ओर की जानी-पहचानी चीजें, बुक शेल्फ, कैबिनेट और हलके पड़ते हुए पर्दे और खिड़कियों के कांच। मैं बिस्तर पर हूं। मेरे ऊपर लिहाफ है। फिर भी मैं ठण्ड से ठिठुर रहा हूं। हड्डियों से अन्दर तक ठण्ड जम रही है। सर में दर्द है।

मस्तिष्क की पकड़ में न आने वाले किसी भय की सरसराहट

बाहर गहरा अन्धकार है। खामोशी के कारण शेष लम्बी रात का काटना मुश्किल जान पड़ता है। स्वप्न की बातें खुली आँखों के सामने आती रहती हैं। दूर लम्बी फैली सड़क—जानी-पहचानी-सी कैम्प को जाने वाली सड़क।

दिप्पू के तर्क अक्सर अकारण होते हैं। आगे-पीछे पूरी बात कह डालती है। उसका थोड़ा बोलना भी भारी पड़ने लगता है, "केवल तुम्हारे कहने-भर की बात थी और मैं तुम्हारे साथ कहीं भी जाने को तैयार थी। बारह वर्ष पहले। मात्र तुम्हारे कहने पर मैंने शेष सबसे पीठ मोड़ ली थी।" उसकी आवाज से लगा था किसी गहरे घाव को सहला रही है।

"अपने निर्णय पर तुम्हें अफसोस हो रहा है?"

"अफसोस की बात नहीं है।"

"फिर?"

"दुःख की बात है। चाहिए तो यह था तुम्हें तुम्हारे तक ही छोड़ चुपचाप अपनी राह चली जाती।"

"मतलब तुमने अहसान किया था?"

"अहसान की बात नहीं है।"

"फिर?"

"बात तुम्हारी बेईमानी की है। तुमने हमेशा बेईमानी से काम लिया है—मेरे साथ, अपने साथ। तुममें सच्चाई का सामना करने की हिम्मत ही नहीं है। शुरू से ही नहीं थी। कोई भी आदमी तुम्हारे लिए उस सीमा तक अच्छा है, जहां तक वक्त-कटी का काम कर सकता है। तुम क्या चाहते हो केवल अंधकार के साथी बने रहें? केवल हाथों से महसूस करने तक के लिए? जहां कहीं मेरे पूरा व्यक्ति बनने का प्रश्न आया है, तुम कन्नी काटने लगते हो। हर बात को स्थगित करते चले जाना तुम्हारी आदत में शुमार हो गया है।"

"मेरे विषय में तुम्हारे ये निष्कर्ष सही नहीं हैं।"

"हम लोगों के इकट्ठे चलने के लिए आवश्यक है तुम सच्चाई से भागना छोड़ दो। दूसरे आदमी से वह सब कुछ पाते रहें, जिसकी हमें अपेक्षा रहती है और बदले में कुछ भी करने से कब तक बचा जा सकता है !"

"ऐसी शिकायतों को न उठाने वाला भी तो कोई मिलना चाहिए।"

"असंभव बातों का पीछा करना छोड़ोगे नहीं तुम ?"

"पता नहीं।"

दिन चढ़ने के साथ-साथ मौसम भी कुछ बदला था। सड़क की चहल-पहल लौट पड़ी थी। ऊपर चोटी की ओर बढ़ते हुए घोड़े तने-तने और बोझा लादे पिट्ठू झुके-झुके धीमी गति से रास्ता नाप रहे थे।

विभू भी जाग चुकी थी। उसके कमरे का बेड बुरी तरह से अस्त-व्यस्त लग रहा था। इधर वह आलस से लदी-लदी जान पड़ती है। हर काम को टालना आदत-सी बन गई है। सारा दिन गाउन में लिपटी हुई किताब खोलकर बैठी रहती है।

पिछले वर्षों से सहसा उसका आचरण भिन्न जान पड़ता है।

विभू भी खेल खेलने लगी थी। शायद वह छिपकर कोई राह बनाने में लगी थी। हालांकि विभू को छोड़कर मेरे सामने कोई विकल्प नहीं रहा था, पर इस स्थिति के लिए भी तैयारी नहीं की थी। सामने पड़ने पर मतलब-भर की बात होती और गुम-सुम रहकर दिन गुजरते जा रहे थे। बिना बताए ही वह पूरा-पूरा दिन बाहर रह जाती पर आपत्ति करने का साहस ही न कर

पाता।

पूरी घाटी के घरों में से एक तीखी गंध उठती रहती है। गर्मी के महीनों में जब धूप चमकती है तो गंध दब-सी जाती है। बरसाती कीड़ों के कचूमर से निकलने वाली इस गंध से अब कभी छुटकारा नहीं होगा। अक्सर कई-कई कीड़े बिस्तर पर रेंगते रहते हैं। विभू के अन्दर भी एक कीड़ा रेंगने लगा था। बारह वर्षों में दूसरी बार वैसा हुआ था। पहली बार की भूल को विभू ने डाक्टर हेलियन की सहायता से तुरन्त सुधार लिया था। इस बार के लिए उसे कोई पश्चात्ताप नहीं है। संभवतः यह भी पूरे षड्यंत्र का एक हिस्सा है।

सुराखों की राह भी ठण्ड कमरे में घुस सकती है। खिड़की बन्द करने के बावजूद हाथ कांप रहे थे। विभू के साथ अपने रवैये पर मुझे पहली बार पश्चात्ताप हुआ था। उसके आक्षेपों के उत्तर में मैं चुप रह जाया करता हूं, कितना गलत रुख था! अक्सर आपत्तिजनक बातों को मैं भूल जाया करता हूं। जो बातें भूलनी नहीं चाहिए थीं उन्हें मैं प्रयत्न से भुला डालता था।

किसी निर्णय पर पहुंचने के लिए मैंने पूछा था, "क्या सोचा है तुमने ?"

विभू जानती थी किस बारे में पूछ रहा हूं, पर एकदम उत्तर नहीं दे पाई थी।

फिर एक बेजान-सी आवाज में बोली थी, "किस बारे में ?"

मुझे स्वयं पर काबू पाना कठिन हो गया था, "बेवकूफ मत बनो। परिणाम भी सोचा है ?"

"इतने वर्ष जब तुमने परिणाम सोचने की आवश्यकता नहीं समझी, तो आज इतना उतावलापन कैसा ?"

"यह तुम बोल रही हो ? मूड औरतों की तरह बहस करना भी आ गया है ? मैं पूछता हूं, इस परिणाम के लिए कब समझौता

हुआ था हम लोगों में ?"

चारों ओर से बंद कोठरी। सब कुछ उलझकर र[illegible]
था। इतने बड़े बिखराव का जिस तरह कोई एक कारण [illegible]
उसी तरह कोई एक समाधान भी न था। इकट्ठी हुई [illegible]
बढ़ते हुए झंझट। शुरू में ही सहज रास्ते ढूंढ़ने की आद[illegible]
अब इतनी दूरी के बाद नये अवरोध समेटने की [illegible]
अजीब-सी समस्या।

विभू के स्वभाव में अजीब-सा हठीलापन आ गया था [illegible]
उससे किसी भी विषय पर सीधी बात करना असम्भव-सा [illegible]
उसके मन की टोह लेना कठिन जान पड़ता और लगता वह [illegible]
निर्णय पर पहुंच चुकी है। इतने वर्ष साथ रहने के बाद [illegible]
ऊब जाना अस्वाभाविक भी तो नहीं होता।

उसके निर्णय की गम्भीरता का अनुमान करते हुए [illegible]
उसके मुंह को ताकता रह जाता। एक अजीब-सा संश[illegible]
दोनों के बीच उठ खड़ा हुआ था। इस आकस्मिक [illegible]
लिए स्वयं को तैयार करने में मैं कठिनाई महसूस कर रहा [illegible]
एक प्रकार का छलावा धीरे-धीरे बारह वर्ष की सहभागिता [illegible]
निगलने लगा था। घर में घुसते ही दम घुटने को होता [illegible]
अन्दर की बात गले में ही अटककर रह जाती।

बच्चे न होने के बावजूद हम लोग सुखी थे और बाद [illegible]
में इस ओर विभू ने कभी रुचि जाहिर नहीं की थी। [illegible]
में इस तरह उसका सख्त पड़ना मुझे अच्छा नहीं जान पड़ा था।
आकस्मिक रूप से अंकुर फूटा हो, ऐसा नहीं था। मुझे पूरी [illegible]
से विश्वास हो चला था विभू ने समझ-बूझकर कार्य किया [illegible]
और जाल बिछाकर मुझे ठगा था। आश्वस्त होने के बाद [illegible]
स्वयं में लिप्त रहने लगी थी और मुझमें उसकी रुचि कम [illegible]
गई थी। ऐसा परिवर्तन उसके स्वभाव में पहली बार लक्षि[illegible]
हुआ था।

यूं बच्चे के आने या न आने से मुझे विशेष अन्तर नहीं
ता; लेकिन बच्चे और विभू के लिए उठने वाली समस्याएं
री चिन्ता का कारण थीं। "आश्चर्य तो इस बात का है, तुम्हारे
न में बच्चे के लिए उत्सुकता क्यों नहीं।" शुभदा ने बच्ची का
ार मुझे सौंपना चाहा, तो मैं साफ बचकर निकल गया था।
ोई बच्चा देखता हूं, तो उस समय के उत्तरदायित्व से भाग
नकलने की अपनी कमजोरी न सामना करने की हिम्मत चूर
ोती जान पड़ती है और अब अचानक विभू बच्चे के प्रति मेरी
विरक्ति का कारण पूछ रही है।

सोचते हुए मैंने कहा था, "आश्चर्य मेरी उत्सुकता के अभाव पर नहीं, अचानक तुम्हारे बच्चे के लिए रुचि पर होना चाहिए. इतने वर्षों बाद आखिर इस तरह के रवैये का मतलब क्या है ?"

बच्चे के अभाव को लेकर विभू मन-ही-मन कोई भावना पाले रही हो, तो मुझे पता नहीं था। मैंने अपनी उदासीनता छिपाने का कभी कोई कारण नहीं समझा था। सच बात तो यह है कि लोग व्यर्थ संतान से सुख की उम्मीद रखते हैं। जितनी चिन्ता हम एक बच्चे को लेकर करते हैं उतनी यदि बुढ़ापे के लिए करें तो अधिक सुरक्षा का प्रबन्ध हो सकता है। बच्चे हमेशा हाथ फैलाए रहते हैं और आस बांधे रखते हैं कि बड़े-बूढ़ों के पास जो कुछ भी है लूट-खसोट लें।

विभू के छिपाकर बिना मुझसे बात किए अपना मन्तव्य प्राप्त करने की भावना के पीछे वर्षों पहले की एक शाम के साथ मुझे गहरा सम्बन्ध दिखाई पड़ता है। चाय का घूंट भरते हुए विभू ने पूछा था, "आखिर तुम्हें बच्चे अच्छे क्यों नहीं लगते ?"

मुझे आज भी याद है कैसे हल्की मुसकराहट के साथ मैंने कहा था, "बस नहीं लगते। क्यों नहीं लगते यह भी कोई बात है !"

विभू के मूक भाव से मैं समझ गया था, उसे बुरा लगा था।

अशान्त-सा उसने सुझाव दिया था, "अपना न सही, गोद ले सकते हैं।"

"अपने या गोद लिए में विशेष अन्तर नहीं होता। तुम्हें इतनी-सी मूलभूत बात तो जाननी ही चाहिए कि बच्चे को विधिवत् मां-बाप की आवश्यकता होती है और हम उसे पैदा करने के बावजूद संरक्षण देने की स्थिति में नहीं हैं।"

"मैं नहीं समझती कोई दिक्कत पैदा होगी। अब वैसी समस्याएं समाप्त हो गई हैं।"

पता था अपनी बात मैं उसे समझा नहीं पाऊंगा। बच्चे गोद लेकर सम्भवतः वह अपनी सुरक्षा का प्रबन्ध करना चाहती थी। उसे भय था कि विवाह के प्रस्ताव को मैं मानूंगा नहीं। उसे साथ वह देना चाहिए था। निर्णय टलता चला आ रहा था। मेरी तो दृढ़ राय थी कि उसे अपनी मूर्खता का निदान स्वयं खोजना चाहिए।

मान-पीले पुलोओवर और टोपी पहने बच्चों को देख-कहीं भी वह रास्ते में रुक जाती और उंगली के इशारे से बताती रहती कि उसे किस प्रकार के बच्चे दरकार थे। चीखें मार उत्पात करने वाले बच्चों की प्रशंसा के पुल बांधती निर्विकार भाव से वह बतियाती चली जाती।

मैंने सोचा था एक बार खुलकर बिमू से बात करूंगा; पर ऐसी कौन-सी बात थी जो वह जानती न हो! उसके हठ पर मन-ही-मन मैं क्षुब्ध रहने लगा था।

मैंने कहा था, "डाक्टरों का मत है, अधिक आयु में शिशु प्राप्त करने वाली स्त्री को कष्ट भोगना पड़ता है। बच्चा तुम्हारे लिए इतना ही महत्व रखता था, तो पहले ही क्यों नहीं सोचा? अब—इतनी देर बाद—इतनी मुश्किलों के बीच।"

"क्या मुश्किलें हैं। तुम्हारे ऊपर कोई प्रतिबन्ध नहीं। नैतिक जिम्मेदारी भी नहीं। यह मेरा निर्णय है। बारह वर्ष तक

हमें ही अब किसी अड़चन का सामना नहीं करना पड़ा तो बच्चे को कौन बाधाएं मिलेंगी, मैं नहीं समझ पा रही। तुम व्यर्थ डरते हो।"

अन्ततः विभू साधारण मूढ़ स्त्री की तरह हठ पर उतर आएगी मुझे उम्मीद नहीं थी। घाटी के अकेलेपन से घबराकर ही उसने बच्चे की कल्पना की थी, ऐसा मेरा विश्वास था। मैंने स्वयं को अपमानित महसूस किया था। साथ ही जिन जटिलताओं से मुझे भय था विभू उन बातों को कोई महत्व ही नहीं देती थी।

गुस्से में आकर मैं कह गया था, "बच्चे का मेरे यहां कोई स्थान नहीं।"

कड़ाके की वह ठण्ड, जो हड्डियों में धंसने लगती है और जिसमें सांझ जल्द ही घिर आती है, अभी शुरू नहीं हुई थी, फिर भी पीठ में दर्द शुरू हो गया था। वर्षों की ठण्ड और सीलन के कारण चोट पर लगी चोट हरी हो जाती है। घाटी में आने के पहले वर्ष ही घोड़े से गिरकर कमर में चोट आई थी। शुरू के साल कभी महसूस ही नहीं हुई। पीठ के दर्द के साथ ही निष्क्रियता का दौर-सा आता है और बिस्तर से निकलने का मन ही नहीं होता।

आदमी कितना भी तटस्थ होने का प्रयत्न क्यों न कर ले, अपनी सही भावना को नहीं समझ पाता। बच्चे को लेकर विभू इतनी गम्भीरता न अख्तियार करती तब भी शायद साथ रहना दूभर हो उठता। जब उचित कारण नहीं रहता, तो हम घुमा-फिराकर स्वयं को तसल्ली दे लेते हैं। शायद हम दोनों ही पहल करने से बचना चाहते थे। एक-दूसरे को बताए बगैर पूरा-पूरा दिन बाहर रह जाने के पीछे भी एक प्रकार से सामना होने पर उत्पन्न होने वाले दुराव से बचने का उपाय करना था।

मेरी ज़रा-सी बात का विभू इतना बुरा मानेगी, मैंने कभी

"उससे पूछ लिया है ?"

"तुम दोनों में ही कहीं जबरदस्त नुक्स है। उसे तैयार करना मेरा काम है।"

"पहले उससे बात कर लो।"

"तुम उसे लेने नहीं जाओगे ?"

"कहां जाना होगा ?"

बिन्नी से कोई उत्तर नहीं बन पाया था। कुर्सी पर आगे झुकते हुए वह आंखें सहलाने लगी थी। अकसर हम ऐसे जाम होकर रह जाते हैं कि आगे-पीछे दोनों ओर के रास्ते अवरुद्ध नज़र पड़ते हैं।

"तुम लोगों की शुरुआत ही गलत थी। अपवाद में कहीं-न-कहीं दोष अवश्य होता है। नियम-भंग को तुमने हमेशा श्रेय के रूप में लिया पर निभा नहीं सके। मैं जानती हूं अन्दर-ही-अन्दर इस बिखराव पर तुम पछताते होगे। तुम लोगों ने नींव गलत ढंग से डाली थी। अपने असली माहौल से भागकर।"

पिछले बारह वर्षों में जिस बात को लेकर बिन्नी ने कभी आपत्ति नहीं की थी आज अचानक महत्त्वपूर्ण हो उठी थी। नियमों को इससे पहले उसने कभी महत्ता नहीं दी थी। आपसी समस्याएं पैदा न होती तो संभवतः आज भी यह सब कहने की उसकी हिम्मत न होती।

मुझे चुप पा सहसा उसने रुख बदल लिया था, "कितनी ठंड है। एक कप चाय के लिए भी नहीं पूछा तुमने ?"

चाय के लिए उठते हुए मैं समझ गया था बिन्नी के पास भी कोई समाधान नहीं है।

ऐसा तूफान घाटी में वर्षों से नहीं आया था। भयंकर साय-सांय धड़धड़ाहट में बदल दीवारों को भेद अन्दर दाखिल हो जाना चाहती थी। ऊपर आबादी के इलाके की तुलना में यहां घाटी में सूनापन और अन्धकार ज्यादा हिंसक हो उठता है।

मुनगान पहाड़ पर तूफानी हवाएँ गुरीली निर्विरोध दौड़ लगाने लगती हैं। पूरे बदन में कंपकंपी दौड़ गई थी, जैसे सारे शरीर पर अपना कोई अधिकार ही न हो। ऐसी कंपकंपी ठंड के कारण नहीं होती। मौसम भयंकर हो उठता था। भयंकर तीखी हवा सब कुछ साथ उड़ा ले जाना चाहती थी।

बारह वर्ष के लम्बे अरसे के बावजूद यहाँ की ठंड को बर्दाश्त करने में मैं असमर्थ रहा था। यहाँ तापमान भी भय और कष्ट को बढ़ा देता है। तूफान को इतना महत्त्व नहीं होना चाहिए। सहसा लगा था तूफान न भी होता तो इस बदहवासी से निजात नहीं थी।

तीसरे कमरे में विभू जैसे चुपचाप सो रही हो। इधर क्यों नहीं आ जाती, कब से पूछना चाह रहा था उससे। यह तो भूल ही गया कि क्या पूछना था। बार-बार ऊपर को उठकर बात आती है और फिर दबकर रह जाती है। कैंप में कब चलना है, डाक्टर डेनियल कई बार कह चुकी हैं। कैप्टन नाम ही भूल गया, कैसे चमक उठता है। विभू का साथ उसके लिए कैसी खुशी लेकर आता है। कितने दिन हो गए, कभी कोई दावत नहीं की। कई बार कहता हूँ हर हफ्ते किसी-न-किसी को बुलाते रहना चाहिए। तूफान तो अब भी आ रहा है, कहाँ आ रहा है व्यर्थ ही।

हाथ-पैर काँपने चले जा रहे हैं। तूफान की वजह से। नहीं तो! कमर का दर्द फिर उभर आया है और विभू भी नहीं है। पीठ पर हाथ भी तो नहीं पहुँचता है। आयोडेक्स कहीं रखी होगी। शायद तीसरे कमरे में हो। कितनी ठंड है! पीठ बिस्तर से लग ही नहीं रही।

विभू—ओह विभू!

पागल हुए हो। करवट बदलो और पड़े रहो! जब दर्द और [illegible] अपने-आप पाँव उठ पड़ेंगे। उस कमरे तक जा

जोर पड़ता है ! बिस्तर ठंडा हो जाएगा। लिहाफ को फिर से टाँगों के नीचे दबाने तक कितनी हवा घुस जाती है।

मुनव्वर ठीक कहता है। बिन्नी भी। अब की मुनव्वर के साथ बम्बई चला जाऊंगा। बिन्नी को साथ लेकर विभू को ले क्यों नहीं आते ? हवा की सांय-सांय में ये रोने की-सी ध्वनि क्यों होने लगती है ? शायद बाहर कोई खड़ा है। कोई भी तो नहीं। विभू के पास तो अपनी चाबी होगी। उठकर देख क्यों नहीं लेते ? लिहाफ टांगों के नीचे दबाने तक तो सारा बदन ठंडा पड़ जाएगा।

निरे ख्वाब कुछ माने नहीं रखते। मुनव्वर ठीक ही कहता है। केवल पहल करने से काम नहीं चलता, पूर्ति की लगन भी होनी चाहिए। जिन्हें दूर जाना होता है वे रातों मे भी चलते हैं। बारह बरस फूंक डाले। अब क्या होगा ? न घर के रहे, न घाट के। अब भी कुछ नही बिगड़ा। आगे के लिए ही चेत जाओ। बम्बई मे क्या रखा है ? दुनिया बहुत आगे निकल चुकी है। ठहरा हुआ पानी गंदा हो जाता है। मुनव्वर द्वारा आकस्मिक हिलाये जाने पर थोड़ी देर के लिए पैदा होने वाली झनझनाहट का कुछ अर्थ नही होता।

दाढ़ी कितनी खुरदरी हो गई है। रेजर चलने मे इनकार कर रहा है। हाथ भी नहीं चलना चाहता। गंदले हरे रंग के धब्बे। एक ही दिन मे चेहरा पुतकर रह जाता है। एक ही ब्लेड से बीस शेव। लोग चौंकाने में सुख पाते होंगे। कोई भी ब्लेड एक शेव से आगे बढ़ने को इनकार कर देता है। ऊपर से नीचे की ओर। ठुड्डी पर गोलाई में। कट—ट। गंदले हरे रंग में चींटियां रेंगने लगती हैं। बढ़ने क्यों नहीं देते ? एक दिन। दो दिन। कोई टोकने वाला नहीं।

विभू दूसरे ही दिन पूछ लेती, "आज शेव नही बनाई न। जाओ··· हटो···हटो···गन्दे।"

८

कभी भी जब केवल अपने साथ होने की इच्छा होती कैम्प को जाती सड़क पर पैदल ही निकल लेता। कई बार स्वयं को मीलों बाहर निकल आया पाया था। सोचते हुए उहापोह में भविष्य की सही तसवीर की तलाश में अकसर दिमाग भटककर रह जाता और निष्कर्ष पर पहुंचे बगैर ही लौटना पड़ता।

कहीं से लौटने के बाद विभू हमेशा चिड़चिड़ी हो उठती। क्रोध को दबाने की कोशिश में वह चुप रहने की अभ्यस्त हो चुकी थी और प्रश्नों के उत्तर में संक्षिप्त एक-दो शब्द बोलकर रह जाती। अन्दर-ही-अन्दर बड़बड़ाती रहती और फिर बहुत दबाते रहने के बाद एकदम भड़क उठती। पिछले दिनों वह हमेशा भरी-भरी रही थी और उस विस्फोट की तैयारी करती रही थी जो घर छोड़ने से पहले फूट पड़ा था।

बारह वर्ष पहले की विभू और आज की विभू में कितना अन्तर आ गया है! इस समय उन्मुक्त भाव से हर बात को मान जाने वाली विभू की आवाज में अलग ही थिरकन थी। बाहर से आने वाले लोगों के सामने वह रुक-रुककर शब्दों पर दबाव डाल बोला करती। इधर उसकी आवाज में तीखापन झलकने लगा था। तब वह बहुत ही सहनशील थी। शुरू में उसकी सहन-

शीलता से मैं प्रभावित भी बहुत हुआ था। उन दिनों उसे
का शौक था और वह शास्त्रीय संगीत में भी रुचि रखती
घाटी में आने के निर्णय के साथ ही उसका नृत्य छूट गया
और उस समय इस बात की उसे कोई शिकायत नहीं थी।
बाद तनाव उत्पन्न होने पर और गिलों के साथ एक शह
शामिल हो गया था कि मेरी वजह से उसका नृत्य मे ही
बनने वाला अच्छा-खासा स्थान नहीं बन पाया था।

इधर शिकायतों के सिवा कुछ रह ही नहीं गया था।
के साथ तनाव में अभी तक मुझे अपना विशेष दोष दिखाई
दिया था। उसी ने बच्चे को जन्म देने का निर्णय लेकर हम
के बीच हुए मूक समझौते का उल्लंघन किया था। पर जि
तरह उसने अन्तिम प्रहार किया था, मैंने स्वयं को कटघरे
महसूस किया था।

"मेरे प्रति जिम्मेदारी महसूस करना कब का छोड़ चुके
तुम, कभी सोचा है ? मैंने हर बार नये सिरे से सोचा
और मानती रही हूँ कि तुम्हारे व्यवहार का परिवर्तन अस्थाय
है। तुम बनना ही चाहते हो, तो ठीक है, फिर मुझे भी हक
कि कुछ निर्णय अपने लिए स्वयं ले सकूं।"

विभू की आवाज तीखी हो उठी थी। उत्तेजना के बिन्दु को
पारकर अब वह सीसे की तरह उबल पड़ेगी, इसका अहसास
और कोई उत्तर न बन पड़ने की विवशता में मैं चुप रह गया
था। कुछ होने पर उसकी आंखों में चमक आ जाती। पिछले
मैं उसके रोष की संभावना कभी इतना कठिन नहीं

कैम्प मे हवाई अड्डा भी बन गया है। नीले साफ आसमान में कहीं दूर से आती हवाई उड़ानों की आवाज अक्सर सुनाई देती रहती है, पर जहाज दिखाई नहीं पड़ते। ढूंढने के लिए आँखें चारों ओर घूमती हैं तो आसमान गोलाकार पिण्ड की तरह जान पड़ता है। नीचाई पर आंखों के सामने से सर्र से निकल जाने वाले जहाज की आवाज और ही तरह की होती है।

छत पर से घाटी का एक विस्तृत दृश्य दिखाई पड़ता है। दूर तक हरियाली घनी होती हुई स्याह और भयंकर जान पड़ने लगती है। बीच में कहीं-कहीं रेल की पटरी भी दिखाई पड़ जाती है। एक ओर सूने-सूने से सिगनल के खम्भे और आउटर का छोटा-सा केबिन यतीम-सा दिखाई पड़ता है। आगे-पीछे कोई इमारत न होने पर केवल एक ही मकान किसी एक भूखण्ड में कितना अजीब जान पड़ता है। पेड़ों की ओट में कभी-कभी केबिन पूरी तरह छिप जाता है और भ्रम होता है कि यहां कुछ था ही नहीं।

विभू, बिन्नी, शुभदा, मुनव्वर और कितने सारे लोग एक तरह से कितने पास थे कि जब चाहो हाथ बढ़ाकर छू लो। कितनी खोखली होती है यह निकटता। मस्तिष्क की भीतरी तह में जहां कोई नहीं झांक सकता, जहां हम अकेले ही पहुंच पाते हैं—वो एकदम अलग-अलग और सूना-सा होता है—और जिसमें पुरानी बातें, भय और अच्छे-बुरे की पहचान का प्रश्न भरा रहता है—निकटतम लोग भी कितने अर्थहीन हो उठते हैं। उन तहों के बीच हम निरन्तर हमेशा-हमेशा के लिए अकेले होते हैं।

एक तरह से विभू का कुछ भी करना अप्रत्याशित नहीं था। विगत के साथ जुड़े रहना गलत ही होता है। घाटी के बारह वर्ष भी कोई एक सम्पूर्ण अहसास नहीं पैदा कर पाए। उन वर्षों का एक-एक दिन हमारे जीवन का अलग खण्ड था, जिसका पिछले या

अगले दिन से मंदन ओढ़ना एक तरह की मजबूरी थी। बात को सहने के लिए हमें तैयारी की आवश्यकता नहीं थी। शुरू ही हम में ही आदत हो गई थी। हर काम दूसरे को बता किया जाए यह भी आवश्यक नहीं होता।

चूंकि मैं वैसी सूचना के लिए तैयार नहीं था, विभु बताए जाने पर चकित-सा रह गया था। फिर अन्दर का न फैलकर हम दोनों के बीच हावी हो गया था। दो दिन तक हम एक-दूसरे से कुछ भी नहीं कहा था। चुपके से अपने-अपने प की तैयारी करते रहे थे, ताकि सामना होने पर मजबूती से अप बात कह सकें। स्वचालित-सी दिनचर्या चलती रही थी औ जानते हुए भी कि दोनों एक ही विषय को लेकर उद्वेलित हैं म की बात कोई नहीं कह रहा था।

शाम को घूमते हुए हम ऊपर मार्किट में चले गए थे। विभु ने अभी से सावधानी बरतनी शुरू कर दी थी। कैफे में बैठने प तेज-नंक काफी के बजाय अपने लिए उसने चाय का आर्डर दिया था।

"बहुत चुप-चुप हो ?" विभू ने कहा था।

"तुम भी तो।"

साथ-साथ चलते हुए और कैफे में बैठने तक हम दोनों में कोई बात नहीं हुई। सफाई-सी देते हुए मैंने कहा, "मैं तो अपने खयालों में ही खो गया था। बात कहां से करता ?"

"क्या सोच रहे थे ? अपने पिता बनने के बारे में ? लगता है बच्चे को गोद में ले तुम्हें आघात पहुंचा है। तुम स्वयं को इस योग्य भी नहीं समझते कि एक बच्चे का उत्तरदायित्व निभा सको ?"

चाय आ गई थी। बैरा एक-एक तश्तरी मेज पर आहिस्ता से टिका थाली का उतार लगा रहा था। बैरे के मुड़ने के बाद घूम मैं कुछ कह न पा रहा था। विभु सर झुका चाय बना रही थी

और सब रहा था उसे मेरे उत्तर की प्रतीक्षा है।

"मैं समझता हूं हमें गम्भीरता से सोचना चाहिए।"

"इसमें गम्भीर होने की क्या बात है? अगर किसी को चिन्ता होनी चाहिए तो वह मैं हूं। मुझे तो कोई घबराहट नहीं।" जैसे कोई गलती महसूस हो गई हो। आवाज को नर्म बनाते हुए उसने कहा था, "मानती हूं तुम्हारे लिए बच्चे का आना थोड़ा आकस्मिक अनुभव हो। विशेषकर इसलिए भी कि तुमने इस दिशा में कभी सोचा नहीं।"

उसकी बात काटते हुए मैंने कहा था, "धक्का देने वाले अनुभव होने की बात नहीं है। प्रश्न यह है कि हम बच्चे के मां-बाप बनना चाहते हैं या नहीं? तो मेरा निश्चित मत है कि नहीं।"

"तुम्हें यह भी समझना चाहिए कि मेरे अन्दर जो पल रहा है वह एक जीव है। चलता-फिरता। क्यों हम लोग साथ रहे हैं उसका स्वाभाविक प्रभाव। एक आवश्यक परिणाम।"

"इस स्थिति की तुम जिम्मेदार हो। तुमने मुझे धोखे में रखा।"

"जैसा तुम कहते हो मान लिया, मैं ही जिम्मेदार हूं; पर अब तो वह बन चुका है। मेरे अन्दर हरकत कर रहा है।"

"तुम्हें छल नहीं करना चाहिए था।"

"कोई भी स्त्री इस स्थिति में यही करती। तुम स्त्री के अन्दर चलने वाले द्वन्द्व और शंका को नहीं समझ सकते। हर स्त्री जब तक मां नहीं बन जाती उसे संशय बना रहता है। जब वह मां बन जाती है तो उसे कैसा महसूस होता है, यह भी तुम नहीं समझ सकोगे। बारह वर्ष का बंजर जीवन मैंने तुम्हारे साथ जिया है, तो अब तुम्हें भी इस स्थिति को स्वीकारना होगा।"

अचानक बिन्नू के अन्दर जो परिवर्तन हुआ था, उसकी संगति को मैंने महसूस न किया हो ऐसी बात नहीं; पर स्वयं को एक नई तरह के बंधन के लिए तयार कर पाना मुझे कैद की

घर के कमरों में सीलन-सी भरी रहने लगी है। कमर का दर्द कभी भी उभरने लगता है। विपु के तर्क और उत्तरदायित्व उठाए की चुनौती कुछ समझ न आने वाली बातें थीं। किसी निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कुछ समय की तो दरकार होती ही है।

अन्दर से एक आवाज यह भी आती, विपु को जब इतना ही आत्मविश्वास है, तो यूं ही सही। बच्चे के साथ ही उसे वापस आना है, तो कभी भी लाया जा सकता है। एक वर्ष का समय दोनों के लिए आवश्यक था। नये सिरे से सोचने के लिए। एक-दूसरे को समझने के लिए। काफी भावुक-सी लगने वाली बात, जो होना एक वर्ष के लिए, और जरूरी हो जाए तो ज्यादा समय के लिए भी, कहीं लोप हो जाऊं; दूर, इस घाटी के पहचाने वातावरण से दूर। अगणित, घुटने टेक, जंग खाए आदमी के दोबारा तनकर खड़े हो जाने की कहानी को लेकर वर्षों से उद्वेलित करने वाली पृष्ठभूमि पर एक किताब लिखूं! सफलता का ढोंग करने वाले उन सभी गद्दीधारियों को एक बार आइने के सामने ला खड़ा करूं, जो समय और परिस्थिति द्वारा उठाए दिए जाने के कारण स्वयं को प्रतिष्ठ मान बैठे हैं।

यहां घाटी में एक मैदान है जहां पर घोड़ों को पहाड़ों पर चढ़ने और ठेले के आगे जुतने के लिए तैयार किया जाता है। मुंह में डालकर ऊपर को कानों तक ले जाई गई रस्सी को दूसरे सिरे से पकड़ घोड़े को एक निश्चित वृत्ताकार मार्ग पर दौड़ाया जाता है। मुंह मे रस्सी की जकड़ और गोलाई में चल पाने की आदत के अभाव मे घोड़ा जब-जब अटकता है पीछे से दूसरा आदमी हंटर लिए खड़ा रहता है। मार्ग से हटते ही हंटर पड़ता और घोड़ा अन्धाधुन्ध भागते हुए कभी पिछली टांगें उठाता है तो कभी अगली। हांफते-हिनहिनाते सहसा वह सधे हुए मार्ग पर भागने लगता है। बारह वर्ष के लम्बे जीवन के बाद उस सड़क

मांमें घर चलने के खयाल से सहसा सब कुछ अजीब हो उठता।

विपू के चले जाने पर घर भुतहा-सा लगने लगता है। दिन भर सोया पड़ा रहता हूं। रात को कभी भी जाग जाता हूं। हर रोज एक-सा दृश्य देखता हूं। मीटरगेज की छोटी-सी गाड़ी के खाली डिब्बे में बैठा हूं। गाड़ी की गति बहुत मन्द है। झुंझलाहट होती है। इंजन में पहुंच जाता हूं। स्पीड की बजाय हाथ ब्रेक पर पहुंच जाता है, फिर पीछे पहुंच जाता हूं। आगे की पटरियां दूर-दूर तक दिखाई पड़ती हैं। हेडलाइट की रोशनी फैलकर चारों ओर बिखर रही है।

फिर वही दृश्य। स्टेशन पर खड़ा हूं। गाड़ी की प्रतीक्षा—प्लेटफार्म के उस सिरे की ओर जिधर से गाड़ी आनी है दूर-दूर तक देखने की कोशिश—लगता है गाड़ी नहीं आएगी। उलझन में पड़ा लौटने को होता हूं। तीन वर्ष की छोटी-सी बच्ची पटरी पर खड़ी है⋯गाड़ी की रोशनी तेज हो आती है। बच्ची को टहलाने के लिए दौड़ने की कोशिश करता हूं; पर भागा नहीं जाता। पांव धीरे-धीरे उठते हैं।

हवा रास्ता रोक रही है। तेज सांय की आवाज⋯कमर का दर्द फिर बढ़ रहा है। पांव बार-बार उठने का उपक्रम करते हैं ⋯तेज भाग पाऊं, तो बच्ची को बचाया जा सकता है⋯ हमेशा से असफल⋯भागकर पटरी पर पहुंचने की उत्सुकता⋯दौड़ने का संघर्ष⋯ हर बार देर हो जाती है⋯फिर दृश्य बदल जाता है। भाग नहीं सकता चिल्ला तो सकता हूं। जोर से बोलता हूं। मुंह हिल रहा है, आवाज नहीं निकलती। मस्तिष्क तेजी से गतिमान है⋯ गला हरकत कर रहा है⋯आवाज नहीं निकल पाती। अगर बोल पाता, बच्ची सुन लेती, तो बच सकती थी। गाड़ी की गड़गड़ाहट से पटरियां हिलने लगी हैं। बच्ची कहीं दिखाई नहीं पड़ती। पसीने से नहाए नींद टूटती और फिर कट-

नाओं का क्रम न बदल पाने की लाचारी में पीठ के बल लेटे हुए और याद करते हुए पड़ा रहता। मेरा दोनों कमरे एकदम सुन-सान।

अब तो बहुत बड़ी हो गई होगी। पन्द्रह वर्ष की लम्बी अजनबी-सी दिखने वाली एक लड़की। विमू ने पूछा था बच्ची के बारे में मैं सोचता हूं कभी? शायद नहीं सोचा था। सच सोचने से होता भी क्या है? शुभदा ने उसके मन में मेरे लिए क्या-क्या भर दिया होगा? घृणा! इसी ख्याल से उसे ढूंढने से बचता रहता हूं। शुरू के वर्षों में कभी इच्छा भी नहीं हुई थी। जैसे-जैसे समय निकलता रहा सहसा उत्सुकता बढ़ने लगी थी। अब?

शुभदा ईर्ष्यालु किस्म की स्त्री थी। नये सिरे से शुरू करना उसके लिए कठिन नहीं था। बच्ची भी भूल चुकी होगी। कोई समस्या नहीं थी। एक ही आदमी था जिसके लिए आगे-पीछे के सभी रास्ते बंद हो चले थे। सब कुछ होते हुए भी कुछ नहीं था। ताज्जुब होता, हो क्या रहा था। इस अन्त को पहुंचने के लिए कब चुना था! झुंझलाहटें, बचकाने आरोप, बेबात आघात पहुंचाने के यत्न। शुभदा के लिए तो वैसा करना सही था।

विमू और अपने बीच भी उन्हीं बातों को लेकर तनाव। हम सब शायद छोटी बातों के लिए ही बने होते हैं। छोटे-छोटे झगड़े जिनसे दोनों ही नीच साबित होते। जब दो लोग लम्बे अरसे तक साथ रह लेते हैं, तो ऐसा ही होता होगा। सभी के साथ। क्योंकि साथ रहने पर हम एक-दूसरे के सही चेहरे को पहचान जाते हैं जो हमेशा भद्दा ही होता है। एक स्थिति वह आ

चाती है कि अपने बीभत्स रूप पर हमें संकोच नहीं रहता।

मोटे पर्दे की तह के नीचे, खालीपन के लबादे के नीचे, घृणित प्रसंगों और उन्हें किसी से भी बांट न पाने की लाचारी को झेलता आदमी कितना असहाय हो उठता है! सोचते—निरन्तर सोचते स्वयं को यातना देते हुए लम्बे उबाऊ जीवन का क्रम, फिर भी हम हार नहीं मानते। सहसा अन्दर से कोई उठ खड़ा होता—क्यों? इतना सन्ताप किसके लिए? समय और परिस्थिति ही महत्त्वपूर्ण होते हैं। उन्हीं के साथ आदमी को स्वयं को ढालना पड़ता है। मजे की बात है कि ढाल भी सेता है। विषू नहीं है, तो नहीं है। वहशी की तरह तनकर तर्क करना—बच्ची? कौन बच्ची? कौन शुभदा? केवल अपनी प्रसन्नता का महत्त्व होता है। एक अच्छी शुरुआत के बावजूद गुम फिसल गए।

वही घटिया भावुकताएं—बलवंत का तटस्थ चेहरा, "कभी सोचा है मुल्क के हालात किधर जा रहे हैं? गरीब तो गरीब हैं ही, अब अमीर भी गरीब होने जा रहे हैं।" मैं मात्र ताकता रहता हूं।

"ऐसे देख रहे हो जैसे निगल जाओगे।" मैं चुप ही रहने का निर्णय लेता हूं।

वह फिर चोट करता है, "कभी भविष्य की भी सोचो है? केवल सोना काम आएगा।" उसकी आंखों में आतंक और सोना बनाने की धमक देखकर मैं भी तटस्थ रहता हूं।

वह फिर चौंचता है, "तुम्हें कोई चिन्ता नहीं?"

मैं एक शब्द का उत्तर 'नहीं' दे चुप रहना चाहता हूं।

सहसा अन्दर से कोई उठकर खड़ा हो जाता है, "चिन्ता केवल पूंजीपति प्रवृत्ति के लोगों को हो सकती है या मेहनत करने वालों को। कल व्यवस्था बदल जाएगी और बचे लोग पुरानों से गिन-गिनकर हिसाब चुकाएंगे। विरासत में कोई

कप चाय तो दे दो। देखो डिस्टर्ब मत करना। बस चुपके से चाय रख चली जाना। इस वक्त मैं जबरदस्त मूड में हूं। काम के मूड में। तुम देख लेना एकदम हिट आइडिया है।

यह—हमारी यातनाएं क्षणिक हैं। स्थायी हों तो भी क्या अन्तर पड़ता है—अन्त में तो शून्य ही है—महाशून्य। मुझे तुमसे कोई शिकायत नहीं। तुम्हें हो तो बताओ। हो भी क्या सकता है? हम गलत घड़ी में पैदा हुए थे—अभावग्रस्त—संतुलन का अभाव सबसे बड़ी दरिद्रता होती है, फिर भी लोग हमसे ईर्ष्या करते हैं। नाटक बन्द करना होगा। बाहर सम्पन्न दिखने का, भरे-पूरे दिखने का, *प्रसन्नचित्त दिखने का नाटक अब बंद* करना होगा, सबके सामने। सबके बीच स्वयं को अभावग्रस्त मानना होगा।

गलत सोच रहा हूं। लोगों के जान जाने का भी क्या महत्त्व है। हम जहां भी हैं सही हैं—ठीक जगह पर हैं। किसी को हमारे *अन्दर झांकने का हक नहीं है। हमारे अन्दर झांकने* का किसी को भी हक नहीं है। मन्द गति से ही सही बहते चलना चाहिए।

घोड़े कहां जा रहे हैं? सम्भलकर बैठो—दायें गहरी खाई है—रास को खींचकर—बाया पलडा ढीला नहीं छोड़ना—तुम तो समझती हो मैं घोड़े की पीठ पर ही सो जाऊंगा। ऊपर—आसमान की ओर बढ़ते यह घोड़ा कहां जाना चाहता है? यह घोड़ा पागल क्यों हो गया है—बेकाबू—बेतहाशा—कहां दौड़ा जा रहा है?

पीठ में फिर दर्द होने लगा है। अभी घूम जाऊंगा। इस दर्द को हमेशा भुलाया जा सकता है। ऊपर से नीचे चलती हुई बिजली की लहरें। यह अन्दर इकट्ठा क्या होता जा रहा है? यह अवयव जुड़ क्यों रहे हैं? एक कप चाय दे दो भई। एक पानी की बोतल भी चाहिए।

बिखरे हुए क्षण धीरे-धीरे जुड़ने लगते हैं। बाहर धूप निकल आई है। हम बिखर सकते हैं, टूट नहीं। जाने दो। कितनी दूर जाएंगे ? यह लचीले तन्तु झटका खाकर फिर सिमट जाते हैं। हम सबमें सहने की अपरिमित शक्ति है। हम लोग बहुत मजबूत हैं। बोझ और यातना के बावजूद हमें दिनचर्या में लगना है। बाहर जाना है—फिर लौट भी आना है। दिन शुरू होता है तो बीत भी जाता है। एक और दिन शुरू हो गया है। हार मान ली है। बहुत थक चुके हैं। खालीपन भी है। तो भी यह क्रम तो चलते ही रहना है। रुकने का मतलब ही क्या है ? मन्द-गति। द्रुतगति। देर हो रही है, पर कोई बात नहीं। पीछे छूट गए हैं तो भी पहुंच ही जाएंगे। बस चलते रहना।

जिन्दगी को खंडों में बांटकर नहीं जिया जा सकता। आदमी का एक व्यक्तित्व होता है और कमियों को समूह से अलग नहीं किया जा सकता। कुछ अभिनय-कुशल लोग भी होते हैं। हम उनमें से नहीं हैं। शुभदा भी नहीं थी। विभू भी नहीं। कोई भी नहीं। जीने के लिए खुद को धोखा भी देना होता है। देखकर भी अनदेखा करना पड़ता है। एक साल की बच्ची। दो साल की बच्ची। तीन साल की बच्ची। जिद्दी किस्म की बच्ची। शुभदा गहरी नींद में पड़ी है और पास लेटी बच्ची रोए जा रही है।—बच्ची सो रही है और नींद में रोने के लिए उसके होंठ थरथराने-से फैलने को हो सिकुड़ जाते हैं। सांसें थम रही हैं। अब मुसकरा रही है। सोते समय ही मुसकराए जा रही है।—सपने आते। शायद कुछ नहीं।

मैं गहरी नींद सो रहा हूं। मेरे ऊपर शुभदा कोई हिला रहा

है। किससे बातें कर रहे थे ? अधलेटा हो जाता हूं। विभू हंसी उड़ा रही है—अब देखो अपने-आप बड़बड़ाते रहते हो। क्या बड़बड़ा रहा था मैं ? तुम ही जानो ? मुझे तो कुछ याद नहीं। ज्यादा सोचा मत करो। वर्ना तो खैर कोई बात नहीं, तुम्हारे दांत भी बजते रहते हैं। मैं सफाई पेश करता हूं—डाक्टर कहते हैं यह साधारण बात है। संशय और दुविधाग्रस्त जीवन और फिर भाग-दौड़। मैं समझती थी हमारे जीवन में कोई समय नहीं। तुम्हारे और मेरे बीच यहां कौन है ? शायद कोई नहीं। फिर भी पुरानी कुछ बातें हैं। बीते हुए अन्धकार। दांत किट-किटाने का यह अच्छा बहाना है। तुम्हें कुछ करना चाहिए। अब मैं कुछ करूंगा।

मुझे पता था मैं कुछ नहीं करूंगा। अकेला आदमी कभी कुछ नहीं करता। अकेला आदमी अस्थिर होता है। उसका कोई स्वाभिमान नहीं होता। उसका खालीपन उससे कुछ भी करवा सकता है। कुछ समस्याएं ऐसी भी होती हैं जिनका कोई समाधान नहीं होता। व्यर्थ ही उन्हें सुलझाने के प्रयत्न में हम स्वयं को धोखा देते रहते हैं। चलते-चलते राहें अलग भी हो जाती हैं। पीछे देखे बगैर हम आगे बढ़ लेते हैं। रेल-पटरियों का इन्द्र-जाल। वर्षों बाद की बाहर की दुनिया। रेल चलने की आवाजें और मैदानों में पीछे छूटते पेड़ और खम्भे, कितने अजीब लगते हैं। पहाड़ों पर पेड़ और खम्भे घूमते-से जान पड़ते हैं।

एक निश्चित व्यक्ति बन जाता हूं। मुझे पता है मैंने विभू के साथ और शायद अन्य लोगों के साथ भी अभद्र व्यवहार किया है। शायद इतना बुरा मैं किसी के साथ भी नहीं किया जितना स्वयं के साथ। मैंने स्वयं को धोखा दिया है। मेरी लड़ाई अपने-आप से है। जिन्दगी में जो करना चाहता था नहीं कर पाया और जो होता रहा उसका अंग बनता चला गया। अब वह सब नहीं चलेगा।

सार्त्र ठीक कहता है, 'तुम्हें केवल अपने लिए सोचना चाहिए, केवल अपने लिए जीना चाहिए।"

दूसरों के लिए सोचना ही मेरी सबसे बड़ी भूल थी। विभू का चले जाना ही ठीक था। उसने अपने लिए सोचा, अपने बच्चे के लिए सोचा। अब मैं मुड़कर नहीं देख सकता। अब मैं ऐसा कोई काम नहीं करूंगा जिसमें मेरी रुचि नहीं। अब मैं उन लोगों के पास कभी नहीं बैठूंगा जो मुझे अच्छे नहीं लगते। अब मैं किसी से अपना कोई काम नहीं निकालूंगा। अब मैं किसी को अपना उपयोग नहीं करने दूंगा।

मैं पागल हो गया हूं? नहीं। मैं पागल नहीं हूं। मैं एक नयी शुरुआत के किनारे आ खड़ा हुआ हूं। बारह वर्ष का लम्बा समय। इतना लम्बा समय कोई किसी के साथ कैसे रह सकता है? बेकार किए हुए वर्ष।

शुभदा से अलग होने के बाद के दो वर्षों में यों यही हुआ था। रेल पटरियों का इन्तजार। बढ़े चलो, बढ़े चलो—यह शहर मेरा पहले भी देखा हुआ है। वर्षों पहले मैं स्टेशन के बिल्कुल सामने वाले होटल में रुका था। अब भी होटल में जाने की इच्छा नहीं हो रही।

किसी-किसी शहर का रेलवे स्टेशन कितना भयंकर होता है—बड़, रागनेश्वर ! चारों ओर ऊपर तक अजनबी-सी गंध। कोई-कोई जगह सामान्य जगहों से एकदम भिन्न होती है। दैत्याकार इंजनों की गड़गड़ाहट और धुआं-मिश्रित हवा।

सामान न बैठने पर कुलियों का झटककर आगे बढ़ जाना। जिस गाड़ी से आप उतरे हैं जैसे छोड़कर आगे चली गई हो और पीछे कोई ठिकाना नहीं। सामने खुले-फैले शहर में पहचान का कुछ भी नहीं। कोई एक घर नहीं जहां कोई जानने वाला है। कोई आदमी नहीं जिससे बात कर सकें।

गाड़ी चलने में अभी दो घंटे हैं। डिब्बे में और भी एक-आध

आदमी हैं। कोट के कालर को सीधा कर सो जाता हूं। कब गाड़ी चली, कब भीड़ आई। टी० टी० ई० हिलाकर उठा देता है। टिकिट—कहता हुआ पास वाले लोगों के टिकिट चेक करता रहता है। आँखें मिलाए बगैर दुबारा टिकिट मांगता है। गुस्से को जज्ब करते हुए टिकिट उसके हाथ पर रखते हुए आँखें बन्द कर लेता हूं।

स्टेशन के सामने बने विशाल मैदान की ओर बढ़ लेता हूं। मैदान में कहीं-कहीं फूल उगाए गए हैं और पेड़ भी लगाए गए हैं। ज्यादातर जगह ऊबड़-खाबड़ है। एक ओर तो नल के चारों ओर गन्दे पानी का तालाब-सा बन गया है। बैठने लायक जगह दूर-दूर नहीं है।

सोचता हूं—विभू ने नये सिरे से शुरू करने का मार्ग चुना है। उसके चारों ओर हमदर्द लोगों की भीड़ है। बच्चों का जीवन भी शुभदा ने बना ही डाला होगा। क्या मैं ही सबका संरक्षक रह गया हूं। वे सब ठीक-ठाक हैं और भाड़ में जाएं।

पशु-पक्षी भी तो साथ-साथ रहते हैं; पर कोई किसी के लिए मरता नहीं। उत्तरदायी भी नहीं होता। जैसा हो रहा है उसी के अनुसार स्वयं को ढालना होता। यात्रा में मुझे प्री-टायर—टू टायर क्यों नहीं चाहिए। बिस्तर भी नहीं। बहुत सारे कपड़े भी नहीं। इस मैदान की ऊबड़-खाबड़ जमीन और सीधी सिर में धंसती धूप में बड़ी आसानी से बैठा जा सकता है। रास्ते से हटकर मैं बैठ जाता हूं, फिर लेट जाता हूं।

एक ओर घटिया किस्म के होटलों की कतार है। सामने स्टेशन की लाल मीनारें चमक रही हैं। गोल काली घड़ी भी दिखाई दे रही है। सहसा कांटे सरकते जान पड़ते हैं। मैं प्लेट-फार्म पर खड़ा हूं। गाड़ी आने में अभी देर है। यह कैसी घड़ी है? इसका कांटा झटके से एक कदम आगे बढ़ जाता है। कुछ क्षण बाद फिर आगे झटक रुक जाता है।

चेहरे का कसाव बढ़ जाता है और मैं बार-बार दुहराता हूं और इस तरह महसूस करने की कोशिश करता हूं, जैसे पूरी तरह से नियंत्रण में हूं। सामने सिनेमा पड़ता है। सोचता हूं फिल्म देखी जाए। समय कटने का बहुत महत्त्व होता है। टायलेट में घुस जाता हूं। शीशे के सामने जा खड़ा होता हूं। आंखें फाड़-फाड़कर देखता हूं। सामने जैसे किसी शत्रु का चेहरा हो जो अजनबी भी है।

शीशे के सामने पड़ते ही एक लम्बी उबाऊ जिन्दगी का सिलसिला घूमने लगता है। आंखों में घबराहट, लम्बा चेहरा, कुछ-कुछ मलिन, कुछ-कुछ सम्भ्रान्त और शायद कुछ-कुछ क्लांत। थोड़ा और पीने की आवश्यकता महसूस होती है। इतना सोचने का मतलब ही पीने की आवश्यकता से होता है; पर कोई साथ होना चाहिए। अकेले पीने का क्या मतलब! कभी जब चेहरे का भाव ढाढ़स देने वाला सजीव-सा होता है तो अनर्थ की शंका होती है। थोड़ी ही देर में टुकड़े-टुकड़े हो ढाढ़स देने का भाव छितराने लगता है।

यह शहर अब भी पहले की तरह ही मनहूस है। इसका भी धीरे-धीरे पतन हो रहा है। सड़कें पहले की तरह ही भीड़ और धुएं से ग्रस्त, गलियां अब भी उतनी ही संकरी। कुछ बढ़ा है, तो बस एक स्थान से दूसरे की दूरी। यह शहर भी सम्भवतः आकस्मिक ही पकड़ में आ गया था। हमारे चारों ओर की दुनिया, जिसे हम सुरक्षित मान बैठते हैं···जिन घेरों का हम समझते हैं कोई अतिक्रमण नहीं कर सकता महना रहते हैं और पता भी नहीं पड़ता। इस शहर के किनारे-किनारे नये के नाम से एक अलग दुनिया बसती चली गई थी। नई दुनिया जिसे पुराना मात्र सोचकर-सा देखता रह जाता है।

इस बढ़ती हुई सभ्यता में —सभ्यता नहीं रेले में, मैं जैसा ठहरा हुआ, जब आम आदमी अपनी ही कमियों के कारण मुंह

के बाहर पड़ता है। कमज़ोर, दयनीय और पीछे छूटा हुआ आदमी उदास ही रह जाता है और समय ऊपर से ही निकल जाता है। यह बासी है। और उस किनारे जो नया नगर जुड़ गया है कितना अजनबी है। चौड़ी सड़कों और बड़ी इमारतों वाला यह भी नगर धीरे-धीरे आदमी को हताश करता रहता है। ऐसी जगह आदमी के अन्दर पराजय की भावना और क्षुद्रता का अहसास भर देती है।

हर नई सुबह बसी हुई होती है और आदमी निचुड़ता चला जाता है। लगा था अपने लिए सही जगह अब घाटी ही है। लौटना कितना कठिन होता है। केवल इस नगर की ही बात नहीं है। लौटना होता ही कठिन है—पुराने लोग, पुराना समय, पुरानी जगह—कहीं भी लौटना कठिन होता है। पुराने लोगों से दुबारा मात्र मिला जा सकता है।

पुरानी जगह पर मात्र कुछ दिन के लिए आया जा सकता है, पर पहले वाली बात उत्पन्न नहीं हो पाती। सुभद्रा से दुबारा सामना होने का जैसे कोई अर्थ नहीं बनता वैसे ही इस नगर में दुबारा आने का कोई मतलब नहीं निकलता। अब हम उस घाटी के हो चुके हैं। इस बड़े नगर से कोई सम्बन्ध नहीं जुड़ सकता। हम कितना बदल गए हैं। हमारी मांगें बदल गईं, हैं। यह नगर भी तो पहले जैसा नहीं रह गया। इसी के एक कोने में कहीं सुभद्रा है। बच्चे भी है। उनका यहां होना कितना निरर्थक है।

९

य कोई दूसरा नगर है। यहां की घनी आबादी में एक
ाके में बलवंत रहता है। स्टेशन से निकल मुझे सीधा उसके
ही चला आना चाहिए था, पर मेरे इरादे मेरे अपने नहीं
थे। मेरे सोचने-समझने की क्रिया पर अदृश्य हावी है। मैं जो
रहता हूं नहीं कर सकता। मैं जो सोचता हूं उस किसी निष्कर्ष
ी ओर नहीं पहुंचा सकता। टैक्सी को होटल चलने को बोल
ता हूं। बलवंत के यहां जाना ही हुआ तो कल चला जाऊंगा।

कमरे में सामान रख कारीडोर में आ जाता हूं। बड़ी-बड़ी
खिड़कियों के पार नीचे होटल का लान और उससे परे दूसरी
इमारतों के पार सड़कें और छत भीगे हुए थे। मेरे होटल
में पहुंचने के बाद वर्षा हुई थी और अन्दर बैठे मुझे पता नहीं
चला। बाहर का मौसम इस समय घाटी के मौसम जैसा हो
आया था; पर यहां की बारिश और वहां की बारिश में भी
एक तरह का अन्तर है।

यहां का आकाश भी वहां के आकाश से भिन्न है। होटल
के चारों ओर का दृश्य बारिश में भी बोझिल बना रहा था।
छोटी-छोटी झोंपड़ियां दूर कारखाने तक फैली हुई निराशा
और दरिद्रता का आभास दे रही थीं। लिफ्ट से होते हुए मैं

ह में लौट आने के बाद वहाँ की कौन सोचता है और फिर ही रहने वाले किसी एक नगण्य 'व्यक्ति में उनकी क्या रुचि सकती है। व्यक्ति अथवा स्थान का लगाव कभी-कभी बहुत ही रुकावट बन जाता है।

घाटी में बारह वर्ष व्यतीत हो जाने के पीछे स्वयं के लिए व्यक्ति अथवा स्थान का क्या महत्त्व था ? कुछ भी तो नहीं। भू और घाटी के प्रति विलगाव के बावजूद कुछ था—एक कार की जड़ता, असफल आदमी की निष्क्रियता और विश्वास। विभू ने बच्चे के माध्यम से उस जड़ता को तोड़ डालने का निर्णय लिया था। उसने कम-से-कम अपनी आवश्यकता को पहचान तो लिया था और मैं ? मेरे लिए होने या न होने में कोई अन्तर नहीं है। अपनी विचारधारा में दूसरों को सम्मिलित करने का हमें कोई हक नहीं होता।

लम्बे सपाट वर्षों के अर्थहीन जीवन के बाद सम्भवतः मैंने अपना विवेक ही खो दिया था। वरना तो मुझे स्वयं ही विभू को स्वतन्त्र कर देना चाहिए था। बच्चे के आने से ही यदि उसके अन्दर का शून्य भरता था, तो मुझे आपत्ति क्यों हुई ? उस समय मुझे अपना मत सही जान पड़ा था। विभू का अभिप्राय समझने का कभी प्रयत्न ही नहीं किया। अपने पूर्वाग्रहों से ग्रस्त हम स्वयं को सही मानते चले आते हैं और समय हाथ से निकल जाता है। विभू के बिना आगे चलना एक तरह से असम्भव लगने लगा था। अलग होकर आदमी तटस्थ ढंग से सोच सकता है।

बैरा ने मेज साफ कर दी थी, "और कुछ, साहब !"

"नहीं।"

[illegible] में [illegible] गया था। फिर [illegible] में पहुँचते ही [illegible] पूरी [illegible] के पास हुआ था। और की तलाश में [illegible] का आग्रह किया था।

वेटर [illegible] दूसरे कोने में [illegible] की तरफ इशारा किया [illegible] करते हुए [illegible] की एक मेज पर आयें [illegible] एक खूबसूरत लड़की [illegible] बैठी थी। उसकी आँखों व [illegible] आभास हुआ था। [illegible] यह कोई [illegible] अनुभव न होगा और [illegible] कहते हुए मैं उसके सामने बैठ गया। यहाँ के [illegible] मुझे [illegible] वेटर द्वारा दिखाई गई सीट की ओर बढ़ गया था।

एक दूसरा वेटर आर्डर आर्डर ले गया। इंटरनेशनल सदर और मेरे जैसा आदमी। धीरे-धीरे सिर हिलाने हुए मस्तिष्क में उनकी गुत्थियों के साथ तैरने लगा था। कभी-कभी चैन के लिए स्थान को तोड़ना भी अच्छा रहता है जिसके लिए घाटी से निकल बाहर आना आवश्यक था।

पिछले वर्षों में इस ओर ध्यान गया हो नहीं था। दूसर से दूर होकर आदमी अधिक तटस्थता से सोच सकता है। विधु के साथ वैमनस्य का सम्भवतः एक कारण यह भी था कि हम एक-दूसरे पर अधिक ही निर्भर करने लगे थे। मेरे यहाँ आने के बाद भी काफी लोग लाउंज में दाखिल हुए थे और चारों ओर समा गए थे। भीड़ बढ़ती रहती है और समाती रहती है। शायद कुछ लोग उठकर चले भी गए थे।

वेटर ट्रे उठाये फुर्ती से हरकत कर रहे थे और रेडियोग्राम पर लोगों की पसन्द की धुनें बजकर रुक जाती थीं। चारों ओर बैठे इन लोगों में शायद कभी कोई घाटी के उस छोटे-से पहाड़ी स्थल पर गया हो जहाँ हमने जिन्दगी के बारह वर्ष व्यतीत कर डाले थे। शायद ही कोई हो। हो भी तो इस महन-[illegible]

ोई में लौट आने के बाद वहाँ को कौन सोचता है और फिर हाँ रहने वाले किसी एक नगण्य व्यक्ति में उनको क्या रुचि ो सकती है। व्यक्ति अथवा स्थान का लगाव कभी-कभी बहुत ड़ी रुकावट बन जाता है।

घाटी में बारह वर्ष व्यतीत हो जाने के पीछे स्वयं के लिए व्यक्ति अथवा स्थान का क्या महत्त्व था? कुछ भी तो नहीं। विभू और घाटी के प्रति जिस लगाव के बावजूद कुछ था—एक प्रकार की जड़ता, असफल आदमी की निष्क्रियता और अविश्वास। विभू ने बच्चे के माध्यम से उस जड़ता को तोड़ डालने का निर्णय लिया था। उसने कम-से-कम अपनी आवश्यकता को पहचान तो लिया था और मैं? मेरे लिए होने या न होने में कोई अन्तर नहीं है। अपनी विचारधारा में दूसरों को सम्मिलित करने का हमें कोई हक नहीं होता।

लम्बे बारह वर्षों के अर्थहीन जीवन के बाद सम्भवतः मैंने अपना विवेक ही खो दिया था। वरना तो मुझे स्वयं ही विभू को स्वतन्त्र कर देना चाहिए था। बच्चे के आने से ही यदि उसके अन्दर का शून्य भरता था, तो मुझे आपत्ति क्यों हुई? उस समय मुझे अपना मत सही जान पड़ा था। विभू का अभिप्राय समझने का कभी प्रयत्न ही नहीं किया। अपने पूर्वाग्रहों से ग्रस्त हम स्वयं को सही मानते चले जाते हैं और समय हाथ से निकल जाता है। विभू के बिना आगे चलना एक तरह से असम्भव लगने लगा था। अलग होकर आदमी तटस्थ ढंग से सोच सकता है।

बैरा ने मेज साफ कर दी थी, "और कुछ, साहब!"

"नहीं।"

मंदानों की गर्मी और बड़े-बड़े शहरों की भागमभाग दोनों बातें मेरे उलट थीं। आगे गर्मी में किताब पर काम करना बहुत आवश्यक जान पड़ा था। निरुद्देश्य घूमते रहने से हताशा और भी बढ़ जाती है। छोटा-सा पड़ाव, पुराना विड, मेरे बचपन का गांव। मुझे लौटा हुआ देख लोगों की उत्सुकता जाग उठी थी। वे पुरानी बातें उठाते, मरे-मराए, बड़े-बूढ़ों की चर्चा चल पड़ती और मेरे पास 'हूं-हां' के अतिरिक्त कुछ भी न था। महमा-सा मैं कम बोलता, फिर भी लोग आकृष्ट हुए रहते। आने-जाने वालों का तांता-सा लगा रहता। सबको एक नया विश्वासपात्र मिल गया था। छोटी-से छोटी बात पर राय लेने लोग आते रहते और उस छोटी-सी जगह पर मैं प्रसिद्धि पाने लगा था। आते-जाते वे मेरे लिए कोई-न-कोई उपहार छोड़ जाते। खाने-पीने की चीजें, किताबें और ऊनी कपड़े तक।

सुबह उठकर मैं लम्बी सैर पर निकल जाता और लौटकर लिखने बैठ जाता। कभी लम्बे पत्र लिखता—पुस्तक के खंडों के रूप में नहीं—मुनव्वर को, बिन्नी को और दूसरे थोड़े-बहुत जान-पहचान के लोगों को भी। कभी शुभदा और बिभू को लेकर अपने व्यवहार की कमियों पर छोटे-छोटे संस्करण और कभी बच्चों को लेकर अपने उत्तरदायित्व से बच भागने के प्रायश्चित में आत्मस्वीकृति।

कुछ सप्ताह की क्रियाशीलता के बाद किताब की अपनी मूल योजना पर एकाग्र होने लगा था।—मुझे किसी से कोई शिकायत नहीं है—नफरत नहीं है—इसलिए नहीं कि कोई आध्यात्मिक शक्ति मेरे हाथ लग गई है। बल्कि इसलिए कि शिकायतों और नफरतों का कोई महत्त्व शेष नहीं रह गया। नफरत से जलकर केवल स्वयं को सताया जा सकता है। शिकायत का मतलब है आप उन नृशंस भेड़ियों को जो दोषी हैं, और भी विरोध में खड़ा कर दें और वे न केवल अपनी पूरी ताकत

आपके विरोध में खड़ी कर आपको आतंकित कर दें बल्कि आपको कुचल डालें।

लिखते-लिखते थक जाता हूं। हथेलियों से आंखों को सहलाते हुए सामने पड़े कागजों को ताकता रहता हूं। इस समय मैं नितांत अकेला हूं। नितांत अकेला आदमी बहुत बड़ी ईकाई होता है। लगन होने पर अधूरे काम भी पूरे हो जाते हैं। इस इलाके में गहरी स्तब्धता व्याप्त है। बाहर तेज चमकदार धूप का साम्राज्य है। कुछ लोग बाहर खेतों में काम कर रहे हैं, कुछ घरों में आराम कर रहे हैं, कुछ मात्र करवट बदल रहे हैं। यहां लोग दफ्तरों में काम नहीं करते हैं। इस गांव में सरकार का एक भी दफ्तर नहीं है।

लिखे गए कागजों को उठाकर एक ओर पटक देता हूं। मन में कोई दुविधा नहीं है। ऐसा कई दिनों से चल रहा है। शायद हफ्तों से और शायद महीनों से। मुझे जल्दी है भी नहीं। मैं ठहरकर रहा जाता हूं। मात्र घूमते रहने का इरादा भी धूमिल-सा पड़ गया है।

हफ्ते के सातों-के-सातों दिन मेरे अपने होते हैं – सारे-के-सारे छुट्टी के। अकेले आदमी की जरूरतें बहुत थोड़ी होती हैं। मुझे और कुछ भी तो नहीं चाहिए। बारह वर्ष तक अनुभव हो। रहने वाली ऊहापोह के अभाव में मस्तिष्क में जैसे सोचने लायक कुछ रह ही नहीं गया था।

हर सुबह एक तटस्थ फुरसत की सुबह के रूप में आती जिसमें आदमी स्वेच्छा से सांस ले सकता है—चाहे जितनी हवा को खींचकर फेफड़ों में भर लेने की स्वच्छन्दता। विचारों की टूटी हुई शृंखला को केन्द्र पर लाते हुए फिर कलम उठाता हूं — यह कैसा भटकाव है? कैसी सीमाएं हैं? घुट-घुटकर जीने और सहने का कोई कारण ही नहीं है। ऐसे में कोई विस्फोट होना चाहिए। विनाश भी कभी-न-कभी आवश्यक हो उठता है। अतने

का कोई एक रास्ता नहीं होता। जो राह आ जाए उसे ही सही मानना चाहिए। कभी-कभी कोई अंग काटना भी तो आवश्यक हो उठता है।

जब लिखने का काम नहीं रहता है तो मैं बीते हुए दिनों के बारे में सोचता हूं। बहुत पहले के पुराने दिनों के बारे में। जब आदमी महत्त्वपूर्ण बातों को लेकर उलझा होता है तो छोटी बातें स्वतः ही विस्मृति के गर्त में लुप्त होती रहती हैं। यहां पर हर तरह के संघर्ष से मुक्त खाया-पिया भी याद रह जाता है।

शुभदा का स्वतः ही ध्यान हो आता है। बुरे-से-बुरे आदमी में भी कोई-न-कोई विशेषता अवश्य होती है। शुभदा की मांग के अनुसार यदि मैं स्वयं को ढाल लेता, उसके बंडों के अहं को भर पाता तो शायद सीधी-सपाट जिन्दगी के बीस-बाइस वर्ष जीने के बाद भी इस समय की तरह मेरे बाल सफेद नहीं पड़ गए होते। एक अनिश्चित मनःस्थिति के स्थान पर मैं एक सुविधा-भरी सहज जिन्दगी जी रहा होता।

एक ज्वार आकर लौट जाता है। दूसरों के विषय में सोचते रहने के बाद जब भी स्वयं पर लौटता हूं व्यर्थ का भाव हावी होने लगता है। लिखने के लिए बैठता हूं तो चारों ओर धूम भर उठता है। लिखता हूं और फाड़ देता हूं। कभी कागज को मोड़-मोड़कर फेंक देता हूं। स्वर्गारोहित उड़ता हूं और मुड़े-तुड़े कागज को उठाकर टुकड़े कर देता हूं, फिर कुछ कदम चलकर ऐसी जगह फेंकता हूं जहां से कागज पर नजर न पड़ सके। टुकड़ों के दिखाई देते रहे। पर मैं लौट नहीं पाता। केन्द्रित नहीं हो पाता।

गांव के लोग आकर बैठे होते। कोई बात कर रहा होता और मैं बीच में ही उड़ते हुए कागज-पत्रों ढूंढने लग जाता और फिर रात के समय भी बगरन बार न होती। रात की अन्य लोगों के हलचल छोटी-छोटी बातें मुस्तविक्ष्य (व) सहित अधि-

चीत होती और मैं असहाय उन सम्बन्धों की कटुता को सोचते हुए भी झेलता और पसीने-पसीने हो जाता।

बीच रात्रि उठ बत्ती जला कागज-कलम लेकर बैठ जाता। थोड़ी देर बाद लगता मस्तिष्क खाली हो गया है और बत्ती बुझा लेटता ही कि दोबारा कोई बात याद आ जाती। खिंच झुंझलाता हुआ मैं फिर उठ बैठता। अकसर गांव के लोग पूछते, सारी-सारी रात बत्ती जला मैं किस काम में लगा रहता हूं? उनको यह भी शक था कि मैं रात में डर जाने के कारण बत्ती जलती रहने देता हूं।

ठंडी सर्द रातें—विभू, कहां हो। दिन-भर की ऊहापोह और भटकाव के बाद ऊब-भरी शाम और फिर रात का शून्य। बांहों का घेरा कसता चला जा रहा है। दबी-सी आवाज—मार डालना चाहते हो। बुरी तरह से रौंदे चला जा रहा हूं।

यह विभू तो नहीं है। दोनों हाथों से मेरे चेहरे को पकड़ पीछे को धक्का देती है। सांस घुट रही है। तुम्हारे मुंह से कैसी बदबू आ रही है। कह रही हूं छोड़ दो। पूरा जोर लगा धकेल देती है।

बहुत थक गया हूं। लेटते ही खर्राटे छोड़ने लगता हूं। डाक्टर खेरा का क्लीनिक। विभू कमरे में लेटी है। बगल में बच्चा सो रहा है। उचककर देखता हूं—शायद लड़का है। किसका है? विभू का और डाक्टर खेरा का। बदचलन औरत। बेवफा।—सोच में पड़ जाता हूं। यह कौन-सी जगह है। अपना ही घर है।

कोने के कमरे में पड़ा मैं विभू के आने की प्रतीक्षा कर रहा

दोपहर का समय है। विभू मेरे सामने बैठी है। विभू में सगर की गाड़ आती है। "अब तुम्हें अच्छी नहीं लगती ?"

"समय के साथ आदमी की आदतें थोड़ी-बहुत बदल तो जाती हैं।"

"यही नहीं कि मेरे जिन्दा होने का अहसास भी तुम्हारे लिए मर गया है।" और उसने रोना शुरू कर दिया है।

"इसमें रोने की क्या बात है ?"

"झूठी तसल्ली के अर्थहीन वाक्यों की मुझे कोई आवश्यकता नहीं। पत्नियों के साथ बोले जाने वाले ऐसे पिटे-पिटे वाक्यों को बचा ही रखा करो। जानना ही चाहते हो तो समझ लो अपने आप को कोसती हूं, तुम्हें कोसती हूं। सब लोग ठीक कहते हैं—व्यर्थ तुम्हारे साथ लग मैंने अपनी ज़िंदगी खराब की है।"

विभू के इस तरह आक्रामक होने के कारण पर विचार करते हुए मुझे डाक्टर खेड़ा का ध्यान आया था। इतने वर्षों में विभू ने इस तरह के व्यवहार का कभी प्रदर्शन नहीं किया था। मैं उठकर अपने कमरे में चला आया था। कुछ ही क्षणों में शायद पीछे-पीछे ही विभू मेरे कमरे में पहुंच गई थी और एकदम शांत लग रही थी। क्रुद्ध होने पर एकदम भड़क उठती है और फिर शीघ्र ही संभल भी जाती है। डाक्टर खेड़ा को लेकर उसके बारे में सोची गई अपनी बातें नितान्त मूर्खतापूर्ण जान पड़ती हैं।

रात भर जागकर लिखता रहा था। सुबह देर तक सोते रहने का इरादा रख पूरा अध्याय लिखकर उसे दुबारा पढ़ता रहा था। काम समाप्त कर प्रत्यक्ष रूप से पूरी तरह हल्का हो गया था और लगा था सतुष्ट हूं। पर नींद नहीं आई थी। ... लगाने की कोशिश में कहीं-से-कहीं भटक जाता। ... एक-एक बात पूरी बारीकी के साथ याद आती रही थी।

धौली पड़ रही है। अभी रात घिर जाएगी। सामने स्कूल दीवार पर छोटे-छोटे धब्बे दिखाई पड़ते हैं।

कोठरी-कोठरी छोड़कर सोफ़ा पर आता हूं। मां पहले आशा टूट गई जान पड़ती है। बांहें भी सिकुड़ी-सिकुड़ी पड़ती हैं। मां को अब भी याद है मेरी रुचि का खाना क्य है।

खाते-खाते सहसा बोल पड़ता हूं, "शुभदा ने मुझे तलाक दे दिया है।"

मां उदास हो आई थी। धीमी-सी फुसफुसाहट, "कोई बात नहीं। औरत करना कौन मुश्किल है···और मिल जाएगी।"

"मैं खुद ही उससे छुट्टी पाना चाहता था।" थोड़ी देर के लिए चुप्पी छा गई थी। लगा था मां को मेरी असफलताओं पर बहुत दुःख था। मैं तसल्ली के कुछ शब्द कहना चाहता था पर कुछ सुझाई ही नहीं पड़ रहा था।

"चलो, आराम करो।" बक्स को नीचे तक खाली कर मां ने नई बेडशीट निकाली थी। चमचमाता नया बिस्तर जैसा अक्सर किसी मेहमान के आने पर लगाया जाता है।

उठकर अन्दर आ जाता हूं। घाटी में बर्फ गिरनी शुरू हो गई। अभी-अभी गाड़ी से उतरा हूं। सारी रात पानी पड़ा है। जिन्दगी के लम्बे पैंतालीस वर्ष व्यतीत हो गए और मैं पुराने हिसाब चुकता करने में ही लगा रहा और अभी तक मैं दौड़ ही रहा हूं। बार-बार उन्हीं बातों से सामना करना पड़ता है। निष्कर्ष पर पहुंच ही नहीं पाता। कपड़ों को दोबारा पहनते हुए विभू लिहाफ खींच लेती है।

सहसा मैं पूछ लेता हूं, "तो क्या सोचा तुमने ?"

"किस बारे में ?"

"सचमुच ही नहीं पता कि किस बारे में पूछ रहा हूं।"

"यह कोई वक्त है बेकार की बातें घसीटने का। मतलब

[प्या]र करने के बाद कैसे आंखें तरेरने लगते हो। अब सो जाओ। सुबह बात करना।"

शायद हम दोनों ही सो नहीं पाए थे और अपने-अपने मत के पक्ष में सोचते रहे थे।

मेरी ओर मुंह करते सहसा उसकी आवाज दृढ़ हो आई थी, "मैंने सोच लिया है।"

"अच्छा !"

"तुम्हें अच्छा लगे या बुरा, बच्चा होगा।"

"तो फिर हम शादी कर लें।"

"जो भी करना है सुबह करना। तुम्हारे झूठों से मैं पहले ही तंग आ चुकी हूं। एक बार पहले भी तुमने शादी की बात कही थी। फिर तुम्हें अपनी अधूरी महत्त्वाकांक्षाएं सताने लगती हैं। बम्बई जाने के मंसूबे और यहीं पड़े-पड़े सड़ते रहने की विवशता। अपने साथ-साथ तुमने मुझे भी मिटा दिया है। कभी भी घर से गायब हो जाने की तुम्हारी आदत और अवहेलना से तंग आकर ही मैंने कुछ सोचा है। बीच-बीच में मजाक के तौर पर तुम विवाह का प्रस्ताव रख देते हो। तुम क्या समझते हो मैं तुम्हारी चालाकी को समझती नहीं।"

इतनी देर तक तो मैं कभी भी नहीं सोता हूं। हड़बड़ाकर खड़ा हो जाता हूं। सोचता हूं यहां और नहीं टिका जा सकता। सामान बांधना होगा, वारस घाटी के मकान पर जाना होगा। विमू के हठीले स्वभाव, बच्चे के निर्णय के बावजूद और अन्य शिकायतों के बावजूद मेरे सामने चुनाव का कोई प्रश्न नहीं था। लौटकर वहीं जाना होगा। ढूंढ़ना होगा।

किताब का काम तसल्ली से चल रहा है। कोई काम चलते समय दर्द की ओर ध्यान होता है तो उत्पुनत, और भी बढ़ जाती है। पूरा होने से पहले का वह थोड़ा-सा समय बेहद बेचैनी का होता है और कमजोरी उतावला हो उठता है। ठंड भी बढ़ने लगी है। कमर का दर्द फिर से ताजा हो उठता है—जाना-पहचाना और जानलेवा। नींद में पीठ पर जोर पड़ते ही हड़बड़ाकर उठ बैठता हूं। ऐसा पहले कभी नहीं हुआ। पुराने नुस्खे निरापता हूं। पर अब उन गोलियों का असर नहीं होता। आलोहेक्स भी बेअसर होने लगी है।

कई दिन तक हिल नहीं पाया था। शहर के डाक्टर ने आते ही अस्पताल भेज दिया था। इतना बड़ा अस्पताल। डाक्टर कहता है, "किसी को बुला क्यों नहीं लेते आप ?"

"जिसे बुलाना चाहता हूं उसे जाकर ही लाया जा सकता है। अपने-आप वह नहीं आने की।"

"अपने-आप कैसे आ सकते हैं यार ? हिल भी सकते नहीं। शायद आपरेशन करना पड़े। पहले एक्सरे होगा।"

नर्स की सहायता से डाक्टर स्ट्रेचर को रिसेप्शन के रास्ते एक बड़े कमरे में ले जाता है। कमरे का अधिकांश हिस्सा एक्सरे मेज से घिरा हुआ है। मेज के ऊपर एक्सरे मशीन की सिलिंडर ट्यूब रोलरों की सहायता से झूल रही है। शीशे की दीवार के पीछे नियंत्रण-कक्ष के उपकरण दिखाई पड़ रहे हैं। कोई-कोई दृश्य अपनी बारीकियों के साथ मस्तिष्क में अंकित हो जाता है और जरा-से प्रयत्न से कभी भी हम उसे समूचेपन के साथ याद कर सकते हैं। अस्पताल के खुले वार्डों और दूसरे कक्षों की तुलना में एक्सरे का कमरा रहस्यमय-सा जान पड़ा था। तस्वीर लेने के लिए ऊपर-नीचे होती काली और बादामी रंग की मशीन दैत्याकार-सी जान पड़ी थी।

शायद के लिए भयमिश्रित सिहरन हुई थी। थोड़ी ही देर

है यह मशीन निर्णय देती—हड्डी गल गई है या कोई फोड़ा है। मशीन की रिपोर्ट पर ही सब कुछ निर्भर करता है। इस आदमी की पीठ को फाड़ दो। और यह लोग जो यहां काम कर रहे हैं बिना किसी भावना के तटस्थता से बतला देंगे कि क्या दिखाई दिया है। हजारों लोगों के गले-सड़े, टूटे अंगों को काटने का निर्णय देते हुए इन पर कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। शायद यह लोग कसाई हैं।

आपरेशन करने की नौबत नहीं आई थी। हड्डी को सीधा रखने के लिए चमड़े का शिकंजा पहनना पड़ा था—हमेशा के लिए। एक महीने से भी ज्यादा अस्पताल में पड़ा रहा था। खाली रहकर भी आदमी को सोचने का मौका मिलता है। अकेला पड़ने को यह भावना उस अनुभव से गुजरने पर ही महसूस की जाती है। मेरे मन में किसी के लिए कोई वैमनस्य शेष नहीं था। किताब भी पूरी हो गई थी। मैं पूरी तरह से निर्विघ्न हो गया था। अभाव का भी अपना इनाम होता है। जो चुके को भूल जाना ही बेहतर होता है। सब कुछ संभवतः किसी को भी नहीं मिल पाता। किसी को कुछ और किसी को कुछ।

मोटरगेज के छोटे संदले रंग के डिब्बों के साथ मैं वापस वादी में लौटा था। अधलेटा होते हुए विभू ने बांहें फैला दी थी और मैंने उसके होंठ चूम लिए थे। अस्पताल के मोटे गाउन के नीचे से विभू के बदन की गर्मी को महसूस करते मैंने भींच लिया था। उसके बाल अस्तव्यस्त हो गए थे और पसीने और टिंचर की गंध महसूस हो रही थी। ऐसे माहौल में पूरा एक महीना बिताकर मैं अभी-अभी निकला था।

अलग होते हुए विभू ने कहा था, "सब कुछ अस्तव्यस्त लग रहा होगा।"

"सब कुछ बहुत भला लग रहा है।" और मैंने उत्सुकता से बदन में झांका था।

मेरा आशय समझ विमू ने नर्स को आवाज़ दी थी जो मुझे एक दूसरे कमरे में ले चली थी। बेबी-कार्ट के पास खड़ा मैं स्तब्ध रह गया था और अनायास बोल पड़ा था, "बस। इतना-सा"
पीछे खड़ी नर्स मन्द मुसकरा दी थी, "प्यारा है।"

इतना छोटा प्राणी मैंने पहले कभी नहीं देखा था। वह स्थिर आँखें बन्द किए मेरी उपस्थिति से अनभिज्ञ सो रहा था केवल सीने की मन्द नीचे-ऊपर होती धड़कन से उसकी साँस चलने का पता चल रहा था।

उस छोटे-से प्राणी को घूरते हुए उसका निरीक्षण-सा करते हुए पाया—यह मेरा बेटा है। मेरा अपना। मेरे शरीर का एक हिस्सा। उस छोटे चिड़ी के बोट-से लग रहे बच्चे के लिए मेरा मन उमड़ पड़ा था।

मन हुआ था ज़ोर से चिल्लाकर उसे सुना दूं, "तुम अकेले नहीं हो। देखो मैं आ गया हूं। आदमी का साथ आदमी ही होता है। यह देखो—मेरे हाथ। यह तुम्हारे हैं। दुनिया सचमुच बहुत बड़ी है। हम-तुमसे ही बनती है। सुनो। सुनो तो मैं क्या कह रहा हूं—मैं तुम्हारा पिता हूं और तुम्हें अपना समझता हूं। तुम्हें मुझसे कोई शिकायत तो नहीं? है तो उसे भूल जाओ।"

प्रसार और निरन्तर प्रयास से जितना तेज दौड़ा जा सके दौड़ना चाहिए। प्रतियोगिता के इस युग में दूसरों से आगे निकलना आवश्यक है और दूसरे आपको पछाड़ न दें इसलिए भागना पड़ता है।"

बैंक के भव्य भवन की मरकरी जगमगाहट गैलरी में सीने हाथी पक्के रंग की लड़की आशा सूपरा को देखकर पहले-पहल उसे जो अनुभूति हुई थी, वह घृणा-मिश्रित ही थी। आगे को और बगलों में हाथ दबाए, वह लम्बे-लम्बे डग भरती, गैलरी के अन्त में लिफ्ट के पास जाकर गायब हो जाती और राणा सोचा करता — होगी कोई टाइपिस्ट या क्लर्क ग्रेड टू। पर बगलों तो भीगी बिल्ली की तरह दुम दबाए कोने में पड़ा रहना सिखाती है, फिर यह लड़की ऊंट की तरह डग भरती, बगलों में हाथ दबाए किस गलतफहमी में खोई रहती है?

कमर्शियल असिस्टेंट बनकर बैंक में ज्वायन किए राणा को अभी कुछ सप्ताह ही हुए थे। बैंक का अनुशासन और वातावरण उसके लिए कौतुक बन रहे थे कि गैलरी में बगलों में हाथ दबाए आशा सूपरा दिखाई देने लगी। अपनी हैसियत और पद के मुकाबले ऊंचा व्यवहार करने वालों से उसे एलर्जी थी। चपरासियों को राजनीति की चर्चा करते और आशा सूपरा को अफसर की चाल चलते देख, उसका मन होता कि पार्लियामेंट स्ट्रीट पर दौड़ती किसी भारी-भरकम गाड़ी से टकरा जाए।

राणा की अभी ट्रेनिंग ही चल रही थी; परन्तु वह लोकसेवा आयोग द्वारा घोषित दो पदों के लिए थ्रू-आवर चैनल प्रार्थना-पत्र भेज चुका था और आई० ए० एस० का फार्म भी भर चुका था। इसके अतिरिक्त इंस्टीट्यूट आफ इकनामिक स्टडीज में एम० ए० का फार्म भरने की भी उसकी योजना थी। मैनेजर सेक्शन के भाटिया ने उसे सलाह दी थी कि इस गति से उसे फार्म नहीं भरने चाहिए। मैनेजर सेक्शन पर यह प्रभाव पड़ जाने पर

प्यार और निरन्तर प्रयत्न के जरिए देश दौड़ा था
होकर चाहिए। कम्पिटीशन के इस युग में दूसरों से आगे नि
कलना आवश्यक है और दूसरे आपको पछाड़ न दें इसलि
सजग रहना पड़ता है।"

बैंक के दफ्तर-दरबार की लम्बी बल्लाकार गैलरी में बीसों
कम्पनी चमके रंग की लड़की बाला लूथरा को देखकर पहले-पह
रूप की अनुभूति हुई थी, वह घृणा-मिश्रित हो गई। आगे बढ़
और बगलों में हाथ दबाए, वह लम्बे-लम्बे डग भरती, गैलरी के
अन्त में लिफ्ट के पास जाकर गायब हो जाती और राधा सोचा
करती — होगी कोई टाइपिस्ट या क्लर्क ऐंड टू। पर क्लर्कों को
भीगी बिल्ली की तरह दुम दबाए कोने में पड़ा रहना सिखाती
है, फिर यह लड़की ऊँट की तरह डग भरती, बगलों में हाथ
दबाए किस गलतफहमी में खोई रहती है?

कमीशन्ड असिस्टेंट बनकर बैंक में आगमन किए राधा को
अभी कुछ सप्ताह ही हुए थे। बैंक का अनुशासन और वाता-
वरण उसके लिए कौतुक बन रहे थे कि गैलरी में बगलों में हाथ
दबाए बाला लूथरा दिखाई देने लगी। अपनी हैसियत और पद
के मुकाबले ऊँचा व्यवहार करने वालों से उसे एलर्जी थी।
चपरासियों को राजनीति की चर्चा करते और बाला लूथरा को
अफसर की चाल चलते देख, उसका मन होता कि पार्लियामेंट
स्ट्रीट पर दौड़ती किसी भारी-भरकम गाड़ी से टकरा जाए।

राधा की अभी ट्रेनिंग ही चल रही थी; परन्तु वह लोक-
सेवा आयोग द्वारा घोषित दो पदों के लिए प्र-आवेदन संबन्ध
प्रार्थना-पत्र भेज चुकी थी और आई० ए० एस० का फार्म भी
भर चुकी थी। इसके अतिरिक्त इंस्टीट्यूट आफ इकनॉमिक स्टडीज
में एम० ए० का फार्म भरने की भी उसकी योजना थी। मैनेजर
सेक्शन के भाटिया ने उसे सलाह दी थी कि इस गति से
नहीं चलना चाहिए। मैनेजर सेक्शन पर यह

प्रसार और निरन्तर प्रयास से जितना तेज दौड़ा जा सके दौड़ना चाहिए। प्रतियोगिता के इस युग में दूसरों से आगे निकलना आवश्यक है और दूसरे आपको पछाड़ न दें इसलिए भागना पड़ता है।"

बैंक के भव्य-भवन की लम्बी आयताकार गैलरी में बीनी दाली पक्के रंग की लड़की आशा लूथरा को देखकर पहले-पहल उसे जो अनुभूति हुई थी, वह घृणा-मिश्रित ही थी। आगे की ओर बगलों में हाथ दबाए, वह लम्बे-लम्बे डग भरती, गैलरी के अन्त में लिफ्ट के पास जाकर गायब हो जाती और राणा सोचा करता—होगा कोई टाइपिस्ट या क्लर्क ग्रेड टू। पर क्लर्कों तो भीगी बिल्ली की तरह दुम दबाए कोने में पड़ा रहना सिखाती है, फिर यह लड़की ऊंट की तरह डग भरती, बगलों में हाथ दबाए किस गलतफहमी में खोई रहती है?

कमर्शियल असिस्टेंट बनकर बैंक में ज्वायन किए राणा को अभी कुछ सप्ताह ही हुए थे। बैंक का अनुशासन और वातावरण उसके लिए कौतुक बन रहे थे कि गैलरी में बगलों में हाथ दबाए आशा लूथरा दिखाई देने लगी। अपनी हैसियत और पद के मुकाबले ऊंचा व्यवहार करने वालों से उसे एलर्जी थी। चपरासियों को राजनीति की चर्चा करते और आशा लूथरा को अफसर की चाल चलते देख, उसका मन होता कि पार्लियामेंट स्ट्रीट पर दौड़ती किसी भारी-भरकम गाड़ी से टकरा जाए।

राणा की अभी ट्रेनिंग ही चल रही थी; परन्तु वह लोक-सेवा आयोग द्वारा घोषित दो पदों के लिए प्रार्थना-पत्र भेज चुका था और आई० ए० एस० का फार्म भी भर चुका था। इसके अतिरिक्त इंस्टीट्यूट आफ इकनॉमिक स्टडीज में एम० ए० का फार्म भरने की भी उसकी योजना थी। मैनेजर सेक्शन के बाटिया ने उसे सलाह दी थी कि इस गति से नहीं चलने चाहिए। मैनेजर सेक्शन पर यह प्रभाव पर

अपनी सीट पर पहुंचकर राणा राहत की सांस लेता और मिस लूथरा के बारे में सोचने लगता। यह डीली-डाली लड़की शायद कैश डिपार्टमेंट के नोट गिनने वाले स्टाफ में होगी।

और फिर राणा का स्थानांतर पी० डी० ओ० में हो गया। नये भर्ती हुए स्टाफ को बिल्ली की तरह सात घर घूमने पड़ते हैं। ट्रेनिंग-पीरियड में थोड़े-थोड़े दिन प्रायः सभी विभागों का काम बड़ा टेढ़ा था। राणा सरदार भागसिंह की बगल में कुर्सी डाल माथापच्ची करता रहता। भागसिंह रोहतक जिले का जाट था और क्लर्क ग्रेड टू से उन्नति करके सुपरिन्टेन्डेण्ट बन गया था। वैसे भी काफी सीनियर आदमी था। वह अपने अधीन सहायकों पर अधिक रौब भी नहीं छाटता था। प्यादे से फर्जी बनकर भी उसकी चाल टेढ़ी नहीं हुई थी। इसी सद्व्यवहार के कारण राणा उसकी इज्जत भी करता था।

राणा को जूझते देख उसने चुटकी ली, "अरे छोरे भी, ताज्जुब है इतने मेहनती होकर भी तुम बैंक में कर्मचारी असिस्टेंट बनकर ही आए। जरा सिर उठाकर तो देखो। तुम्हारे से तो वह कुडी ही अच्छी है।" और राणा ने सिर उठाकर जो देखा तो उसका सिर घूम गया। डिस्पैच-सेक्शन के सुपरिटेंडेंट की कुर्सी पर मिस आशा लूथरा लीव-वैकेंसी में चार्ज संभाले बैठी थी। सिक्योरिटीज उसकी आंखों में घूमते-सी दिखाई दीं और वह उन्हें संभलवाए बिना ही उठ गया। उसका सारा दिन आत्म-भर्त्सना में बीता। उसी दिन से सिगरेट, जो कि वह केवल मिस लूथरा का रास्ता नापने के लिए पीता था, उसकी पक्की साथिन बन गई।

और फिर अचानक मिस लूथरा उसके लिए सरोजिनी नायडू से भी ऊंची उठ गई। अब वह अपनी तलब को दबाने का प्रयत्न करता। कभी अचानक रास्ते में पड़ भी जाती तो घुटे-घुटे मन से चुपचाप उसे देख लेता और राणा उसे इंगित करके

गर्व से ही कहता, "मैडम, चिंता मत करो। शीघ्र ही इस बैंक की लम्बी लम्बी सीढ़ियों से मैं तुम्हारे से भी ऊंचे ओहदे के लिए लम्बे-लम्बे डग भरता उतर जाऊंगा। तुम्हें खबर तक भी न होगी। हालांकि यह भी सत्य है कि जीवन-भर तुम्हें भूलूंगा नहीं।" उस दिन से उसकी डाक का खर्चा और भी बढ़ गया। नए-नए पदों के लिए प्रार्थना-पत्र जाने-आने लगे। आई० ए० एस० की परीक्षा में वह पूरी तैयारी से बैठा था।

एक विभाग से दूसरे में उसका ट्रांसफर होता रहा···और फिर एक दिन वे दोनों टकरा भी गए। मिस आशा सूपरा उसकी इमिजिएट बास थी। वह भी एक दिन बैंक में रहकर अफसर बन सकता था। लेकिन उस पर तो बास का भी बास बनने की धुन सवार थी। वह निधड़क और लगन से कार्य निब-टाता। यहां तक कि मिस सूपरा का काम भी उसने अपने ऊपर ओढ़ लिया। वह केवल हस्ताक्षर-भर करती और धीरे-धीरे उस ढीली-ढाली लड़की पर जैसे उसका पूरा आतंक हो छा गया।

राजा को ताज्जुब होता कि इस लड़की में क्या था, जो उसमें नहीं है। मैनेजर सेक्शन के आफिस ने एक दिन चुपके से मिस सूपरा की पर्सनल-फाइल उसे दिखा दी थी। हाई स्कूल फर्स्ट पोजीशन, इंटर फर्स्ट पोजीशन, बी० काम फर्स्ट डिवीजन और बिजनेस एडमिनिस्ट्रेशन डिप्लोमा। राजा समझ गया। काफी मसाला था। लड़की शैक्षणिक योग्यताओं में असाधारण थी। राजा ने तो केवल एम० काम० द्वितीय श्रेणी में पास किया था। अगर वहीं वह पोजीशन-होल्डर होता तो वह भी प्रोबेशनरी आफीसर ही होता, पर मिस सूपरा तो उससे दो वर्ष जूनियर भी थी। यह शायद भटकाव का उसके प्रति

कहा था, "मिस लूथरा, आप भी अजीब लड़की हैं। कोरेगटरी या क्लर्क बनकर ही इतनी संतुष्ट हो गईं। आपको तो मैनेजर बनने की अभी से तैयारी करनी चाहिए। पार्लियामेंट स्ट्रीट के इस भव्य बैंक की पहली महिला मैनेजर।"

उसकी बात पर मिस लूथरा केवल रहस्यमय मुसकान बिखराकर चुप हो जाती। धीरे-धीरे वे आपस में बहुत घुल गए और मिस लूथरा के प्रति अपने बनते-बिगड़ते सारे विचार उसने साफ-साफ उसे सुना डाले।

इस एक वर्ष की नौकरी में उसकी समझ में अच्छी तरह आ गया था कि इस्तीफा दिए बिना वह अफसर नहीं बन सकता। विचारों के प्रवाह में डूबते-उतराते उसने एक दिन बिना किसी भूमिका के सवेरे ही इस्तीफा लिखकर मिस लूथरा की मेज पर भेज दिया। मिस लूथरा ने आश्चर्यचकित होकर पूछा था, "यह एकदम क्या सूझा तुम्हें ?"

"काफी कुछ तो पहले ही तुम्हें बता चुका हूं। समझ लो तुम्हारी वजह से ही।"

"तो मुझे कहा होता, मैं ही तुम्हारी समस्या हल कर देती। मैं भी तो इस्तीफा दे सकती हूं।"

"नहीं, उसकी नौबत नहीं आएगी। तुम्हारे यहां रहने से ही मैं अपनी धुन पूरी कर पाऊंगा। शीघ्र ही फिर मिलेंगे।"

और सचमुच वह लम्बे-लम्बे डग भरता अपने दफ्तर के भव्य भवन की सीढ़ियों से उतर गया और भाड़िया के शब्दों में सनक ने उसे सड़क पर ला खड़ा किया था। नौकरी तो क्या, अब उसे कोई पूछता भी नहीं। वह फ्रस्ट्रेशन का शिकार कभी मिस लूथरा से मिलने भी न जा पाया।

बिल्ली के भाग छींका टूटा था फिर खुदा जब देता है...। जो भी कहिए। चीन का आक्रमण। आपात काल की घोषणा हुई और पुरानी मेरिट-लिस्ट में से कुछ अफसरों को पुलिस में लेने

की योजना गृह-विभाग ने बनाई। राणा को फिर से साक्षात्कार के लिए बुलाया गया और वह चुन लिया गया। डाक्टरी तक हो गई, परन्तु चुनाव के बाद पोस्टिंग होने में कितना समय लग जाता है, यह तो कोई उम्मीदवार ही जान सकता है। आफीसर ट्रेनिंग स्कूल में जगह न थी। सो, बैच बनाकर चुने हुए लड़कों को भेजा जाने लगा। राणा पहले बैच में न जा सका। उसने दोबारा आई० ए० एस० का फार्म भरा था; परन्तु एक बार चुनाव के बाद ढंग से तैयारी कहां हो पाती है!

नौकरी की ही तलाश में वह दिल्ली गया था। मन काबू में न रख सका और उसे मिस लूथरा के घर जाना ही पड़ा। मिस लूथरा के ब्याह की सूचना उसे बहुत स्वाभाविक-सी लगी। वह जिन्दगी की इतनी मंजिलें पार कर चुका था, जहां कोई आश्चर्य आश्चर्य नहीं लगता। कोई मुश्किल मुश्किल नहीं लगती। उसने स्वयं को सांत्वना दी थी—अफसर बनने की धुन अलग बात है और मिस लूथरा से लगाव अलग बात है।

युद्ध की स्थिति कुछ सुलझ गई थी शायद। जिन लड़कों को ट्रेनिंग पर नहीं बुलाया गया था, उन्हें बुलाने की आवश्यकता ही समाप्त हो गई। गृह-विभाग अब सामान्य प्रणाली के चुनाव से ही अफसरों का भर्ती होना न्याय-संगत समझता है। राणा ने सोचा, अच्छा ही हुआ कि आशा का ब्याह हो गया।

वह फुर्सत की घड़ियों में सिर लटकाए सोचने लगता। कितनी सुखी होगी आशा। न जाने उसका पति के घर का क्या नाम है? उसके ढीले-ढाले व्यक्तित्व में अब वह एक गदराए बदन वाली ब्याहता के सुखद जीवन की कल्पना करता। सलवार-कमीज छोड़कर अब तो वह केवल साड़ी बांधती होगी। अवश्य ही वह उसे पूरी तरह भूल गई होगी। आफीसर क्लब की रौनक अब वह राणा को कैसे पहचान सकती है।

दो वर्ष और व्यतीत हो गए। अथक प्रयास के बाद उसे वाणिज्य विभाग में रिसर्च असिस्टेंट का जाब मिल गया; लेकिन कॉलेज की स्फूर्ति न जाने कहां खो गई—अब वह सुबह अलसाया-अलसाया तैयार होता। साइकिल को धीरे-धीरे चलाता वह एक-डेढ़ घंटे में दफ्तर पहुंच ही जाता। कभी-कभी बिना किसी इरादे के ही छुट्टी लेकर दोपहर का शो देख लेता।

खोये हुए क्षण

सीढ़ियों पर पहुँचते ही आदतानुसार उसने सर बायें घुमा थूक दिया। दूसरी-तीसरी सीढ़ी पर झाग और बुलबुले सांप के फेंचुल-से चमकने लगे। इस तरह थूकने की उसकी आदत बन चुकी थी, जिससे उसे कभी हिकारत महसूस नहीं होती थी। और पीछे से आ रहे किसी पर थूक जा पड़ने के डर को वह हमेशा अवहेलना कर जाता रहा था।

परसों ही वह भुवाली सैनिटोरियम से नैनीताल होता हुआ लौटा था। वह काफी थक गया था और अनमना-सा भी था। रह-रहकर इंदु का चेहरा उसकी आंखों के सामने आ जाता और उसे लगता कि वह दह रहा है। इंदु को इस तरह अकेले छोड़ आने के कारण प्रताड़ना की भावना को वह कई बार नीचे धकेलने का प्रयत्न कर चुका था। वह स्वयं को समझाने का प्रयत्न करता, आखिर वह कर भी क्या सकता था। कभी यह भी लगता कि जितना संभव था, उसने किया था। फिर उसकी भावना नियति को दोष देने की होती। वह सोचता, जो भी कारण रहा हो, उसे कोई वास्ता नहीं। उसे तो हर हालत में जूझना ही है। जिसका गला घुटेगा उसकी आंखें बाहर निकलेंगी ही। उसे लगा था, उसकी अपनी भावना का कोई मूल्य ही नहीं। कठपुतली की तरह नाचने के अलावा कोई चारा न था।

रवि का पत्र मिला, तो उसे आना ही पड़ा। आने का फैसला लेने में एक कारण निम्मी से मुलाकात होने की संभावना भी थी। पुरानी यादें, जो उसने मन में काट फेंकी थीं, उफान-सी मारती झिलमिलाने लगी थीं।

कुछ लोग घेरा बनाए खड़े थे और कुछ ट्विस्ट कर रहे थे। निम्मी का ध्यान बंट गया था। वह एक ओर खड़ा रह गया।

सहसा उसने पूछा, "तुम्हें ट्विस्ट में कोई रुचि नहीं ?"

"मैं कहीं और बहक गया था।"

"कहां ?"

"तुम्हारे बारे में सोच रहा था।"

"क्या सोच रहे थे मेरे बारे में ?"

"यही कि तुम इन सालों में जरा भी नहीं बदलीं। हमेशा ही खुश और उतनी ही खूबसूरत।"

उसकी आंखों में इंदु का चेहरा तैर गया। वह भी कभी निम्मी की तरह ही लगती थी। सहसा उसके कदम कमरे की ओर बढ़ गए। उसे पता था, निम्मी भी उसके साथ-साथ अन्दर चली आएगी। उसे विश्वास-सा हो रहा था, अन्दर पहुंच यदि वह निम्मी से कुछ चाहने लगे तो वह विरोध नहीं करेगी। वह पलंग पर अधलेटा हो गया और निम्मी सामने पड़ी कुर्सी पर जम गई थी। उसे लग रहा था, निम्मी स्वयं ही शुरुआत करेगी। उसके सिर में जिसके कारण उत्पन्न दर्द अब भी शेष था। मनोबल खराब होने से उत्साह जैसे हो बुझा-बुझा था। कुछ धर्मपत्नी की तलब अचानक उस पर हावी होने लगी, ओवरकोट पहनते हुए वह उठ खड़ा हुआ।

"कहां जा रहे हो ? जब से आए हो खोए-खोए-से ही हो। कोई खास बात है क्या ?"

वह खोखली-सी हंसी हंस दिया, "नहीं कोई खास बात नहीं।"

निम्मी ने तब उसका हाथ पकड़ लिया था, "बताओ न। मैं कुछ कर सकती हूं ?"

उसने निम्मी को बांहों के घेरे में ले लिया। तभी निम्मी ने प्रश्न किया था, "इंदु से तुम खुश नहीं हो न ?" वह चौंक-सा गया, पर उससे इंदु की सफाई में कुछ कहते न बना। उसे लगा, इंदु की बुराई में कुछ भी कह सकना उसकी सामर्थ्य के बाहर है। एक झटके से उसने चेहरा मोड़ लिया। पुरानी डैनिटाविजन का छोटा-सा कमरा उसकी आंखों में नाच गया। वहां वह इंदु

कि लड़की [illegible] करवट बदल रही है। वह तेज कदमों से कुछ [illegible]
पानी की तलाश में कमरे के बन्द घेरे से निकल खुली सड़क पर
आ गया था।

□□